हिन्दी-पद्य-रचना

छन्द बनाना सीखने वालों के लिए

हिन्दी का पिङ्गल

लेखक

रामनरेश त्रिपाठी

प्रकाशक

हिन्दी-मन्दिर, प्रयाग

सातवाँ संस्करण संशोधित और परिवर्द्धित } जुलाई, १९३२ { मूल्य आठ आना

भूमिका

आजकल लोग, विशेषकर नवयुवक, एकान्त में घंटों दिमाग़ लड़ाकर, नवीन-प्राचीन भाव जो कुछ हाथ आया, उन्हें पद्य के टूटे-फूटे साँचे में ढालकर चाहते हैं कि संसार उसकी मधुर भाव-भरी मूर्ति को अपने हृदय में स्थान देकर उसका गौरव बढ़ावे। परन्तु जो लोग साहित्य-संसार में अभी नये-नये चले आ रहे हैं, उनके पास ऐसा साँचा कहाँ है जिसमें वे अपने भावों को ढाल-कर मनोहर रूप और सुन्दर आकार-विशिष्ट मूर्त्ति संसार को दिखा सकें? हमने यह पुस्तक रूपी साँचा उन्हीं के लिए तैयार किया है। वे अपने भाव—अपने विचार इस साँचे में ढालकर उसे सुन्दर पद्य-रूप में संसार के सामने रक्खें। फिर देखें, संसार उनके रचना-चातुर्य का कितना सम्मान करता है।

यह पुस्तक नौसिख पद्य-रचयिताओं के काम की है। इसमें उन्हीं विषयों का वर्णन किया गया है, जिनकी प्रारम्भ में आवश्यकता पड़ती है। इसे पढ़ लेने के पश्चात् कोई अलंकार-ग्रन्थ पढ़ना चाहिये, तब कवित्व-शक्ति विकसित होगी।

इस पुस्तक में सब बातें सरल भाषा में अच्छी तरह समझा-कर लिखी गई हैं। नये संस्करण में अलंकार और प्रस्तार का भी समावेश कर दिया गया है। छंदों की संख्या भी बढ़ा दी गई है। इससे यह पुस्तक सर्वांग-पूर्ण और विद्यार्थियों के लिये बड़ीही उपयोगी हो गई है। आशा है, पढ़नेवाले इससे पूरा लाभ उठायेंगे।

छंदों के उदाहरण कुछ तो हमने स्वरचित रख दिये हैं, जिनके नीचे किसी का नाम नहीं। कुछ अन्य कवियों के ग्रन्थों से लेकर लिखे हैं, उनके नीचे हमने कवियों के नाम लिख दिये हैं।

रामनरेश त्रिपाठी

सूची

मात्रिक—अर्द्धसम

मात्रिक—विषम

वर्ण-वृत्त—सम

हिन्दी-पद्य-रचना

पद्य की परिभाषा

हिन्दी-भाषा में वाक्य-रचना दो प्रकार की होती है—एक को गद्य और दूसरे को पद्य कहते हैं। जिस रचना में वाक्य की मात्राओं वा उसके वर्णों का कोई नियमित क्रम, कोई नियमित संख्या या नियमित विराम, गति अथवा प्रवाह का विचार न हो, उसे गद्य कहते हैं। और जिस रचना में मात्रा, वर्ण विराम, गति तथा चरणान्त में तुकबन्दी के नियमों का विचार रखकर पद-योजना की जाती है, उसे पद्य, छन्द वा कविता कहते हैं। अर्थात् जो बातें साधारण बोल-चाल में कही जाती हैं, उसे गद्य कहते हैं; और जो गिने हुए अक्षर या मात्रा और पदों के द्वारा एक नियमित रूप में कही जाती हैं, उसे पद्य कहते हैं। गद्य में व्याकरणानुसार शब्दों के क्रम का ध्यान अवश्य रखना पड़ता है; और पद्य में शब्दों के क्रम में उलट-फेर हो जाने में भी कोई दोष नहीं माना जाता।

पद्य की विशेषताएँ

गद्य से पद्य में कई विशेषतायें हैं। उनमें से कुछ ये हैं—

१—पद्य में थोड़े शब्दों के द्वारा अधिक बातें कही जा सकती हैं।

२--पद्य का सम्बन्ध गान-विद्या से है और गान-विद्या प्राणि-मात्र का हृदय मोह लेती है। इसलिये पद्य मनुष्य को स्वभाव ही से प्रिय है।

३—पद्य की रचना प्रायः अक्षरों, मात्राओं और पदों की गिनती के अनुसार क्रमबद्ध होती है। इसलिये वह पढ़ने में भी अच्छा मालूम होता है।

४—पद्य को कंठस्थ रखने में सुविधा होती है।

५—पद्य के द्वारा थोड़े समय में अधिक प्रभावोत्पादक बातें कही जा सकती हैं।

६—पद्य के द्वारा भाषा में स्थिरता और प्रौढ़ता आती है। भाषा के अधिकांश ललित और प्रभावशाली शब्द प्रायः पद्य-द्वारा ही समाज में प्रचार पाते हैं।

वर्ण और मात्रा

वर्ण या अक्षर दो प्रकार के होते हैं—दीर्घ वा "गुरु" और ह्रस्व वा "लघु"।

वर्ण के उच्चारण में जो समय लगता है, उसे मात्रा कहते हैं।

जो समय ह्रस्व वर्ण, जैसे—अ, इ, उ, ऋ, क, कि, कु, कृ, इत्यादि के उच्चारण में लगता है, उसकी एक मात्रा मानी जाती है; और जो समय दीर्घ वर्ण, जैसे—आ,ई,ऊ,ए,ऐ,ओ,औ,अं,अः आदि के उच्चारण में लगता है, उसकी दो मात्राएँ मानी जाती हैं। क्योंकि दीर्घ वर्ण के उच्चारण में ह्रस्व वर्ण की अपेक्षा दुगुना समय लगता है।

उदाहरण—जैसे "राजा" शब्द; इसमें रा और जा दोनों अक्षर दीर्घ हैं। इसलिये इनमें से प्रत्येक में दो-दो मात्राएँ हैं, और दोनों में मिलकर चार मात्राएँ हैं। इसी प्रकार 'कला' शब्द में

'क' ह्रस्व और 'ला' दीर्घ है। 'क' की एक मात्रा और 'ला' की दो मात्राएँ, दोनों मिलकर इस शब्द में तीन मात्राएँ हुईं।

अनुस्वार और विसर्ग को भी दो मात्राएँ मानी जाती हैं। जैसे—"संग", इस शब्द में "सं" दीर्घ और "ग" ह्रस्व है; और दुःख में "दुः" दीर्घ और "ख" ह्रस्व है।

परन्तु जिस अक्षर के ऊपर अर्द्ध-विन्दु हो, उसकी एक ही मात्रा मानी जाती है। जैसे "हँस", इसमें "हँ" और "स" दोनों को एक-एक मात्रा है।

हिन्दी-कविता में संयुक्ताक्षर के पहले का अक्षर कहीं दीर्घ माना जाता है, कहीं नहीं। दोनों प्रकार के उदाहरण मिलते हैं। यह कवि की इच्छा और सुभीते की बात है। चाहे वह संयुक्ताक्षर के पहले अक्षर को दीर्घ माने या ह्रस्व। हिन्दी-भाषा में इसके लिए कोई खास नियम नहीं है। हाँ, कुछ शब्दों में संयुक्ताक्षर के पहले अक्षर को दीर्घ मानना ही पड़ता है। जैसे—सत्य, कल्प, रम्य, तत्व, शब्द आदि। इसमें स, क, र, त और श दीर्घ माने जायँगे और त्य, ल्प, म्य, त्व, और ब्द ह्रस्व।

परन्तु किसी शब्द का पहला अक्षर यदि संयुक्त है तो उस शब्द से पहले जो शब्द है उसका अन्तिम अक्षर दीर्घ ही पढ़ा जायगा, इसके लिये कोई बाध्यता नहीं है। पढ़ने में जिस तरह सुगमता हो, उसे वैसा ही पढ़ लेना चाहिये। जैसे, सूर्य-प्रभा; इसमें प्र के पहले का य दीर्घ भी पढ़ा जा सकता है और ह्रस्व भी। कवि अपनी सुविधा के अनुसार चाहे जैसा प्रयोग कर सकता है।

लघु और गुरु

पद्य-साहित्य में ह्रस्व वर्ण को लघु और दीर्घ वर्ण को गुरु कहते हैं। लघु का चिन्ह एक खड़ी पाई "।" और गुरु का चिन्ह "ऽ" है।

सुभीते के अनुसार हिन्दी के कवि कभी-कभी गुरु अक्षर को लघु कर लिया करते हैं। जैसे—दुःख को दुख, संग को सँग, राजा को राज इत्यादि।

परन्तु ख़ास-ख़ास शब्द, जो दोनों रूपों में प्रचलित हैं, उन्हीं को ऐसा करने का कवि को अधिकार है, सब शब्दों को नहीं। हिन्दी-कविता में हल् वर्ण की एक मात्रा मानी जाती है। जैसे महान् में न् को "न" और सत् में त् को "त" मान लिया गया है।

कभी-कभी छन्द की गति के विचार से गुरु वर्ण को लघु पढ़ना पड़ता है। जैसे—जामवन्त के वचन सोहाये—इसमें "सोहाये" शब्द का "सो" वर्ण गुरु होने पर भी लघु पढ़ा जायगा।

गति और यति

प्रत्येक छन्द में एक प्रकार की गति अर्थात् पाठ-प्रवाह भी होता है। इसका कोई ख़ास नियम नहीं बतलाया जा सकता। इसका जानना केवल अभ्यास पर निर्भर है। जैसे—"लखन जब सकोप वचन बोले"—इसमें १६ मात्राएँ तो हैं; परन्तु चौपाई की गति नहीं है। यहाँ गति-भङ्ग-दोष माना जायगा। इसकी गति ठीक करने से यह "लखन सकोप वचन जब बोले" होगा।

बहुत से छन्दों में विराम का भी नियम होता है। अर्थात् पिङ्गल के अनुसार शब्द-योजना इस प्रकार से होती है कि पढ़ते-पढ़ते नियमित स्थान पर थोड़ा-सा रुककर तब आगे पढ़ना पड़ता है, उसे विराम, विश्राम या यति कहते हैं।

गण

तीन-तीन वर्णों का एक-एक गण होता है। गण ८ हैं। उनके नाम और लक्षण नीचे लिखे जाते हैं—

संख्या	गण	रूप	संकेत नाम	उदाहरण
१	मगण	S S S	म	मायावी
२	नगण	| | |	न	नलिन
३	भगण	S | |	भ	भारत
४	यगण	| S S	य	भवानी
५	जगण	| S |	ज	जवान
६	रगण	S | S	र	रोहिणी
७	सगण	| | S	स	सरला
८	तगण	S S |	त	संसार

इन आठों गणों को इनके रूप-सहित याद रखने की कई युक्तियाँ हैं; जैसे--

"यमाताराजभानसलगम्"

इस सूत्र में पहले के आठ अक्षर आठों गणों के अद्यक्षर हैं। इसी सूत्र में गणों के रूप भी हैं। जिस गण को जानना हो, उसी अक्षर के साथ आगे के दो अक्षर और मिलाने से वह गण बन जायगा। जैसे—यगण की पहचान के लिये य के आगे के दो अक्षर मिलाये तो "यमाता" हुआ। इसमें आदि में लघु और मध्य और अंत में दो गुरु हैं। इसी प्रकार यदि सगण जानना हुआ तो स के आगे के "लगम्" को उसके साथ मिलाया तो "सलगम्" हुआ। ग के आगे अनुस्वार है, इसलिये "..'' गुरु हुआ। अतएव आदि लघु, मध्य लघु और अंत गुरु सगण हुआ। इसी प्रकार और गण भी निकल आते हैं। आठ अक्षरों के बाद ल और ग अक्षर लघु और गुरु के संकेत नाम हैं।

दूसरी रीति—

आगे लिखे दोहे से भी गणों और उनके रूपों का पता चल जाता है —

आदि मध्य अवसान में, य र त सदा लघु मान।
क्रम से होते भ ज स गुरु, म न गुरु लघु त्रय जान॥

अर्थात् यगण के आदि में लघु, शेष दोनों गुरु; रगण के मध्य में लघु, शेष आदि और अन्त में गुरु; तगण के अवसान (अन्त) में लघु, शेष पहले दो गुरु; इसी प्रकार भगण, जगण और सगण के आदि, मध्य और अन्त में क्रमशः गुरु और शेष लघु होते हैं। मगण में तीनों वर्ण गुरु और नगण में तीनों लघु होते हैं।

देवता, गणागण और फल

आठों गणों के आठ देवता माने गये हैं, और उनके फल भी भिन्न-भिन्न हैं। वे इस प्रकार हैं—

गण	देवता	फल
म	पृथ्वी	श्री
न	स्वर्ग	सुख
भ	चन्द्रमा	यश
य	जल	वृद्धि
ज	सूर्य	शोक
र	अग्नि	मृत्यु
स	वायु	भ्रम
त	आकाश	शून्य

नीचे लिखे श्लोक को याद कर लेने से ग्रहों के देवता और उनके फल संक्षेप ही में मालूम हो जायँगे—

मो भूमिः श्रियमातनोति य जलं वृद्धिं र चाग्निर्मृतिं।
सो वायुः परदेश दूरगमने त व्योम शून्यं फलं॥
जः सूर्यो रुज का ददाति विपुलं भेन्दुर्यशो निर्मलं।
नो नाकश्च सुखप्रदः फलमिदं प्राहुर्गणानां बुधाः॥

आठ गणों में म, न, भ, य, ये चार शुभ हैं, और शेष ज, र, स, त, अशुभ। किसी मनुष्य की प्रशंसा में कुछ कविता करनी हो तो उसके प्रारम्भ में अशुभ गण न आने चाहियें। छंद के प्रथम चरण के आदि के तीन अक्षरों के लिये ही यह नियम है। शेष चरणों के आदि या मध्य में तो चाहे जैसा शुभ-अशुभ गण पड़ जाय, उस से कुछ हानि नहीं। और ईश्वर विषयक कविता में तो शुभ-अशुभ गण का कुछ विचार ही न करना चाहिये।

किसी-किसी का मत है कि गणागण का विचार प्रथम चरण के प्रारम्भ के छः अक्षरों में करना चाहिये। छः अक्षरों के दो गण हुये। किन-किन दो गणों के साथ रहने से क्या-क्या फल होता है, यह नीचे लिखा जाता है—

मगण नगण ये मित्र हैं, भगण यगण है दास।
र स रिपु सम हैं शोकप्रद, त ज हैं निपट उदास॥

मित्र + मित्र = सिद्धि	उदास + मित्र = अल्प फल
मित्र + दास = जय	उदास + दास = दुःख
मित्र + उदास = हानि	उदास + उदास = अफल
मित्र + शत्रु = मित्र-नाश	उदास + शत्रु = दुःख
दास + मित्र = सिद्धि	शत्रु + मित्र = शून्य
दास + दास = हानि	शत्रु + दास = प्रियानाश
दास + उदास = पीड़ा	शत्रु + उदास = शंका
दास + शत्रु = पराजय	शत्रु + शत्रु = नाश

गणागण का दोष मात्रिक छंदों ही में माना जाता है, वर्ण-वृत्तों में नहीं। परन्तु वर्ण-वृत्तों में भी यह ध्यान रखना चाहिये कि यदि प्रारम्भ में ज, र, स या त गण पड़ते हों तो शब्द मंगलवाची होना चाहिये।

प्रत्येक चरण में गणों को गिनती प्रथम अक्षर से की जाती है। अन्त में जो दो या एक अक्षर बच जाते हैं, वे लघु हुये तो लघु और गुरु हुये तो गुरु मान लिये जाते हैं।

दग्धाक्षर

पद्य में अक्षरों के शुभाशुभ पर भी ध्यान रखने का नियम है। स्वर सभी शुभ माने गये हैं। व्यञ्जनों में शुभ और अशुभ इस भाँति माने गये हैं—

शुभ—क, ख, ग, घ, च, छ, ज, त, द, ध, न, य, श, स, क्ष।

अशुभ—ङ, झ, ञ, ट, ठ, ड, ढ, ण, थ, प, फ, ब, भ, म, य, र, ल, व, ष, ह।

अशुभ अक्षरों में भी झ, ह, र, भ और ष तो अत्यन्त दूषित हैं। ये दग्धाक्षर कहलाते हैं। पद्य के आदि में इनका होना बड़ा दोष है। हाँ, देवता-सम्बन्धी किसी शब्द का प्रारम्भ इन्हीं अक्षरों से हो तो वह अशुभ नहीं समझा जाता और दीर्घ अक्षर कोई भी दग्धाक्षर नहीं माना जाता।

तुक

हिन्दी-कविता में तुक की प्रधानता उसके प्रारम्भ-काल ही से चली आती है। बहुत ही कम ऐसे उदाहरण मिलते हैं, जिनमें तुकों का कुछ ख्याल न किया गया हो। संत-कवियों ने कहीं-कहीं नाम-मात्र के बेतुके पद भी कहे हैं। उनमें से दरिया साहब का एक पद नीचे लिखा जाता है—

अबके बार बकस मोरे साहिब तुम लायक सब जोग हे।
गुनह बकसिहो सब भ्रम नसिहो रखिहो अपने पास हे।
अछै बिरिछ तर लै बैठैहो तहवाँ धूप न छाँह हे।
चाँद न सुरुज दिवस नहि तहवाँ नहिं निसु होत बिहान हे।

अमृत फल मुख चाखन देहै। इतनी अरज हमार है।
भवसागर दुख दारुन मिटिहै छुटि जैहै कुल परिवार है।
कह "दरिया" यह मङ्गलमूला अनूप फूलै जहाँ फूल है।

इस प्रकार के दो-चार उदाहरणों के सिवा शेष हिन्दी की सब प्राचीन कविता में तुक का पूरा ध्यान रक्खा गया है।

तुक मनुष्य को स्वभाव ही से प्रिय है। अशिक्षित और गँवार लोगों को भी तुक न मिलना खटकता है। अहीर, धोबी, चमार, कहार और नाई आदि के जातीय गानों में भी तुक मिला रहता है। इन सब बातों से जाना जाता है कि पद्य के लिये तुक एक प्रधान वस्तु है।

यद्यपि संस्कृत में तुक मिलाने की बिल्कुल परवा नहीं की गई है। वाल्मीकि, व्यास, भास, कालिदास, क्षेमेन्द्र, आदि किसी कवि ने तुक मिलाने का प्रयास नहीं किया। पर उनकी रचना में भी जहाँ अपने आप तुक मिल गया है, वहाँ पद्य अधिक कर्ण-मधुर और आकर्षक हो गया है।

गान-विद्या का काम बिना तुक के चल ही नहीं सकता। जयदेव ने गीत-गोविन्द में तुकों के बहुल-प्रयोग ही से अमृत-वर्षा की है। एक पद सुनिये—

पतति पतत्रे विचलित पत्रे शंकित भवदुपयानम्।
रचयति शयनं सचकित नयनं पश्यति तव पंथानम्॥

उर्दू के शेर भी एक प्रकार से बेतुके ही होते हैं। पूरी ग़ज़ल में तो प्रत्येक शेर के दूसरे चरण का तुक मिला रहता है। पर बातचीत में जब किसी एक शेर का अलग प्रयोग किया जाता है, तब प्रायः वह बेतुका हो रहता है—

मग़रिब ने ख़ुर्दबीं से कमर उसकी देख ली।
मशरिक़ की शायरी का मज़ा किरकिरा हुआ॥

महफ़िले यार से उठने को उठे तो लेकिन।
दर्द की तरह उठे गिर पड़े आँसू की तरह॥

बार-बार सुनने का अभ्यास पड़ जाने से उर्दू-कविता के शेर बेतुके हो अच्छे लगने लगे। जैसे हिन्दी में आल्हा छन्द बेतुका हो गाँव वालों का मन को मोह लेता है। इसी प्रकार संस्कृत-कविता अतुकान्त होने पर भी हृदय को वश में कर लेती है। पर यह सब महत्व तो कवितागत भाव का है। तुक कान का विषय है। कान को प्रिय लगने के लिये तुक मिलाने की आवश्यकता अस्वीकार करने की बात नहीं। मन को वश करने के लिये कान की ख़ुशामद करनी ही पड़ेगी।

खड़ी बोली की कविता में भी तुक ही की प्रधानता है। इधर कुछ दिनों से अंग्रेज़ी और बङ्गला की नक़ल करके हिन्दी में अतुकान्त कविता का भी प्रचार हो चला है। यह प्रवाह भी किसी सीमा तक जाकर ही रुकेगा। पर यह निश्चय है कि सर्वसाधारण में सदैव तुकबन्दी ही की प्रधानता रहेगी; क्योंकि वह मनुष्यमात्र को स्वभाव ही से प्रिय है।

यहाँ तुक के सम्बन्ध में कुछ जानने-योग्य बातें लिखी जाती हैं—

प्रत्येक छन्द के चरणान्त में जो समस्वर अक्षर होते हैं, उनका नाम तुक है।

तुकबन्दी से यही मतलब नहीं कि अन्त के अक्षर मिल जाँय, बल्कि स्वर भी मिलने चाहिये।

तुक उत्तम, मध्यम और निकृष्ट तीन प्रकार के होते हैं।

यदि पद्य के अन्त में दो गुरु आ पड़ें, तो वहाँ पाँच मात्राओं का समस्वर होना उत्तम और चार का मध्यम है।

यहाँ सब के अलग-अलग उदाहरण दिये जाते हैं—

उत्तम

केहि ढूँढ़त तेरो कहा खोयौ क्यों अकुलाति लखाति ठगी सी।
हरीचन्द ऐसहि उरझी तो क्यों नहिं डोलति सङ्ग लगी सी॥

हरिश्चन्द्र

मध्यम

प्रभो शंकरानन्द आनन्द-दाता।
मुझे क्यों नहीं आपदा से छुड़ाता॥

शङ्कर

यदि पद्य के अन्त में गुरु लघु (SI) या लघु गुरु (IS) आ पड़ें, तो पाँच मात्राओं का तुक उत्तम, चार का मध्यम, तीन का निकृष्ट और एक का तो सर्वथा त्याज्य है। जैसे—

उत्तम

जिय पै जु होय अधिकार तौ विचार कीजै, लोकलाज भलो बुरो भले निरधारिये। नैन श्रौन कर पग सबै परबस भये उतै चलि जात इन्हें कैसे कै सँभारिये। हरीचन्द भई सब भाँति सों पराई हम इन्हें ज्ञान कहि कहो कैसे कै निवारिये। मन में रहै जो ताहि दीजिये बिसारि मन आपै बसै जामें ताहि कैसे कै बिसारिये॥

हरिश्चन्द्र

मध्यम

हमहिं तुमहिं सरबरि कस नाथा।
कहहु तो कहाँ चरन कहँ माथा॥

तुलसीदास

निकृष्ट

तन ताजी असवार मन, नयन पियादे साथ।
यौवन चल्यो शिकार को, बिरह बाज लै हाथ॥

सर्वथा त्याज्य

निन्दा अस्तुति उभय सम, ममता मम पद-कञ्ज।
ते सज्जन मम प्रान प्रिय, गुन-मन्दिर सुख-पुञ्ज॥
तुलसीदास

मुनि जेहि ध्यान न पावहीं, नेति नेति कह वेद।
कृपासिन्धु सोइ कपिन्ह सन, करत अनेक विनोद॥
तुलसीदास

यदि पद्य के अन्त में दो लघु आ पड़ें तो चार मात्राओं का मिलना उत्तम, दो का मध्यम और एक का निकृष्ट है। जैसे—

उत्तम

भरत दीख प्रभु आश्रम पावन।
सकल सुमङ्गल सदन सुहावन॥

मध्यम

बचन सुनत प्रेमाकुल बानर।
जोरि पानि बोले सब सादर॥

छन्द और उनके भेद

छन्द दो प्रकार के होते हैं—मात्रिक छन्द और वर्ण-वृत्त। प्रत्येक छन्द में प्रायः चार चरण होते हैं। चरण को पद और पाद भी कहते हैं।

जिन छन्दों में मात्राओं की गिनती के अनुसार पद वा पाद

होते हैं, उन्हें मात्रिक छन्द कहते हैं। और जिन छन्दों में गणों की गिनती के अनुसार पद होते हैं, उन्हें वर्ण-वृत्त कहते हैं।

दोनों प्रकार के छन्दों के तीन-तीन उपभेद भी हैं। उनके नाम सम, अर्द्ध-सम और विषम हैं।

जिस छन्द के चारों चरण समान मात्रा या वर्ण के हों, उसे सम कहते हैं। जैसे—चौपाई या भुजङ्ग-प्रयात। जिसके पहले और तीसरे तथा दूसरे और चौथे चरण समान हों, उसे अर्द्ध-सम कहते हैं। जैसे—दोहा। जिसके चारों पद असमान हों, उसे विषम कहते हैं। जैसे आर्या—मात्रिक छन्द और वर्ण-वृत्त की पहचान के लिए यह दोहा याद कर लेना चाहिये—

गुरु लघु चारों चरण में, क्रम से मिलें समान।
वर्ण-वृत्त है, अन्यथा, मात्रिक छन्द प्रमान॥

अर्थात् जिस छन्द के चारों पदों में गुरु और लघु समान क्रम से मिलें, वह वर्ण-वृत्त है और जिसके पदों में गुरु-लघु का कोई क्रम न हो, केवल मात्रा ही समान हो, उसे मात्रिक छन्द समझना चाहिये।

संख्या-सूचक शब्द

पद्य में यदि कहीं संख्या दिखाने का काम पड़ता है तो प्रायः संख्या-सूचक शब्दों ही का प्रयोग किया जाता है। जैसे, जहाँ "एक" कहना हुआ वहाँ "चन्द्र" कहने से भी एक का बोध होता है। कुछ संख्या-सूचक शब्द नीचे लिखे जाते हैं—

०—आकाश।

१—आत्मा, भूमि, चन्द्र।

२—पक्ष, आँख, भुजा, अयन।

३—गुण, ताप, राम, काल, अग्नि।

४—वेद, युग, वर्ण, आश्रम, पदार्थ।

५—शर, पांडव, गति, प्राण, यज्ञ, कन्या, भूत, गव्य।

६—ऋतु, रस, राग, अलिपद, वेदांग, शास्त्र।

७—मुनि, सागर, स्वर, गिरि, ताल, लोक, वार, अश्व।

८—वसु, सिद्धि, दिग्गज, योग, याम।

९—भूखण्ड, रंध्र, अंक, ग्रह, निधि, भक्ति।

१०—दोष, दिशा, दशा।

११—शिव।

१२—राशि, सूर्य।

१३—किरण, नदी।

१४—भुवन, मनु, रत्न, विद्या।

१५—तिथि।

१६—कला, संस्कार, शृङ्गार।

१७—कोई खास नाम नहीं है। १०+७ या और कोई दो संकेत मिलाकर काम निकाला जा सकता है।

१८—पुराण।

१९—कोई खास नाम नहीं है।

२०—नख।

पद्य में अंकों की गिनती दाहिनी ओर से बाईं ओर को होती है। जैसे—१५ कहना हुआ तो शर, चन्द्र कहेंगे। यह क्रम से तो ५१ हुआ; परन्तु कविता में ऐसा मान लिया गया है कि अंतिम अंक को पहले कहेंगे।

संख्या-संकेतों के बदले उनके पर्यायवाची शब्द लिखने में भी कुछ दोष नहीं। वेद के लिये श्रुति और चन्द्रमा के लिये शशि लिखा जा सकता है।

वर्णन

किसी वस्तु का वर्णन करना हो तो उसके किन-किन अंगों का या किन-किन गुणों का वर्णन करना चाहिये, यह नीचे लिखा जाता है। इनको अच्छी तरह समझ लेने पर वर्णन करने की शक्ति बढ़ जायगी।

भूमि—देश, नगर, वन, पहाड़, आश्रम, नदी, ताल, ऋतु और सूर्यचन्द्र के द्वारा उत्पन्न हुये प्रभाव का वर्णन।

देश—रत्नों की खानि, पशु, पक्षी, भाषा, भूषण, वेश, सुगंध और मनुष्यों के ऐश्वर्य, दान-दाक्षिण्य आदि।

नगर—खाईं, क़िला, महल, ध्वजा, बावड़ी, कूप, तालाब, स्त्रियों का सौन्दर्य, बाग़, विहार-स्थल, निवासियों के सुख और निर्भयता आदि।

वन—सिंह, हाथी आदि भयानक जन्तु, दावाग्नि, वृक्ष, लता और कुञ्जों का भयावना दृश्य, नदी, खोह, राक्षस आदि का भय।

पहाड़—चोटी, गुफा, दरी, धातु, औषध, झरना, सिद्ध-समुदाय और वृक्ष-श्रेणी।

आश्रम—होम का धूम, वेद का गान, सिंह, मृग, मोर और साँप आदि परस्पर-विरोधी जीवों का वैर-त्याग और भूमि का निवास आदि।

नदी—जलचर, जलज, प्रवाह, तरंग, तट, जल का रूप, स्नान आदि।

बाग़—सुन्दर लता, पुष्प, कोकिल आदि पक्षी, भ्रमर, सुगंधित वायु, लताकुञ्ज, पक्षियों और भ्रमरों का मधुरस्वर आदि।

तालाब—जल-खग, कमल, हाथी की केलि, मछली आदि।

समुद्र—बड़ी तरंग, गम्भीरता, रत्न, जल-जन्तु, चन्द्रोदय, अगमता आदि।

बसंत—वृत्तों और लताओं का नये पत्र और पुष्प से लस जाना, कोकिल का कूजना, भौंरे का गूँजना, सुगन्धित वायु, वन्य-जीवों का आनन्द, किंशुक आदि पुष्पों की बहुलता आदि।

ग्रीष्म—घोर गर्मी, लू चलना, जलाशयों का सूख जाना, जीवधारियों की व्याकुलता, वृत्तों का जल जाना, सूर्य की प्रचण्डता आदि।

वर्षा—घटा, वृष्टि, हंस, बगुला, मोर, चातक, बिजली, कदम्ब, केतकी, गरजना, इन्द्रधनुष, भूमि की हरियाली, पानी की प्रचुरता आदि।

शरद्—निर्मल आकाश, चन्द्र-प्रकाश, कास, पथिक और राजा का प्रयाण, खंजन, निर्मल जल और कमल का वर्णन।

हेमन्त—शीत, बड़ी रात्रि, छोटा दिन, आग और रुई की उपयोगिता, पुष्टिकारक भोजन आदि।

शिशिर—हिम, ठंडी हवा, सूर्य की किरण, पतझड़ आदि।

सूर्योदय—उदय होते समय की लाली, अंधकार-चोर-तारा-दीप- चन्द्रमा और कुमुद की हानि आदि।

प्रभात—चिड़ियों का चहचहाना, भौंरों की गूँज, फूलों का खिलना, ठंडी हवा का चलना, वेद और शंखध्वनि, प्रकाश आदि।

चंद्रोदय—चकवा-चकई, कुमुदिनी का खिलना, चकोर, समुद्र-तरङ्ग, किरनों की स्निग्धता आदि।

राज्य—राजा, रानी, राजकुमार, मन्त्री, सेना, सेनापति, दूत, प्रजा, प्रजा का सुख, अच्छे राजनियम आदि।

राजा—प्रतिज्ञा-पालन, पुण्य, प्रताप, शासन, बल, बुद्धि, विवेक, धैर्य, दंड, सत्य, वीरता, दान, कोप, सेना, क्षमा, कृपा आदि।

संग्राम—सेना का शब्द, रज, कवच, शस्त्र चलाना, साहस, ललकारना, मारना, कबन्ध उठना, रक्त को नदी बह चलना आदि।

उपमा

दो वस्तुओं में जहाँ आकृति, गुण और दशा में समानता पाई जाती है, वहाँ उपमालङ्कार होता है। जिस वस्तु की किसी अन्य वस्तु से उपमा दी जाय उसे उपमेय और जिससे उपमा दी जाय उसे उपमान कहते हैं। जैसे—"मुख चन्द्र सा सुन्दर है", इसमें 'मुख' उपमेय और 'चन्द्र' उपमान है। 'सा' उपमा का वाचक और 'सुन्दर' उसका गुण है।

किस स्थान पर कैसी उपमा दी जानी चाहिये? यह तो कवि की प्रतिभा पर निर्भर है। अच्छे प्रतिभाशाली कवि सदा अनूठी उपमाएँ दिया करते हैं। परन्तु कुछ उपमायें, जो खास-खास अवसरों के लिये निर्धारित सी हो गई हैं, यहाँ लिखी जाती हैं—

श्वेत—कीर्ति, हास्य, शरद्-घन-ज्योत्स्ना, शशि, सूर्य, सुधा, कपूर, बगुला, हीरा, कास, केचुली, हिम, कमल, भस्म, कपास, रेत, चन्दन, हंस, दूध, दधि, शङ्ख आदि।

पीला—हरड़, हल्दी, चंपक, दीप-ज्योति, भूमि, अंकुर, गंधक, वानर, किंजल्क, केशर, सोना, चपला, दिवस, पराग आदि।

श्याम—आकाश, साँप, खंजन, नीलकंठ, मोर, विश्वासघाती, पाप, राक्षस, अन्धकार, जामुन, यमुना, तिल, दुष्ट का मन, नील-कमल, हाथी, भील, मसि, काजल, कस्तूरी, भौंरा, रात, अपयश, कलंक, आँख के तारे, कोकिल, भैंस, काक, कुरूप, कीच, बाल, काम, कलह, छल, राम, कृष्ण, नीलम, अलसी का फूल आदि।

लाल—मङ्गल, बीरबहूटी, लाल फूल,रक्तचन्दन, मदिरा, रवि, ओंठ, मुरगे की चोटी, माणिक, कुँदरू, कमल, जपा, अनार का फूल, ढाक का फूल, अग्नि, पल्लव, क्षत्रिय का धर्म, मंजीठ, महावर, रुधिर, नख, गेरु, संध्या आदि।

कुटिल—अलक, ललाट, तोते का मुख, साँप, कटाक्ष, धनुष, बिजली, बाल चन्द्रमा, शूकर का दाँत, कपटी आदि।

कोमल—पल्लव, फूल, दया, माखन, प्रेम, कमल आदि।

कठोर—वज्र, हीरा, कुच वीर का चित्त, सूम का मन, कछुवे की पीठ, हठ, दुष्टों की दृष्टि आदि।

अचल—सती का चित्त, युद्ध में वीर, सन्त का मन, धर्म आदि।

चपल—मृग, वानर, पीपल का पत्ता, सियार, लोभी का मन, बालक, मछली, खंजन, भौंरा, हाथी का कान, बिजली, वायु और कुलटा का कटाक्ष आदि।

सुखद—विद्वान् पुत्र, पतिव्रता-स्त्री, विद्या, नीरोग शरीर, धन और मित्र का मिलन आदि।

दुःखद—पाप, पराजय, झूठ, हठ, मूर्ख मित्र, कुरूपता-क्रोधी स्वभाव, व्याधि, अपमान, ऋण, बुरा स्वामी, बुरे गाँव में निवास, कुलटा स्त्री, परतन्त्रता, दरिद्रता, शत्रु आदि।

मन्दगति—हंस, हाथी, पतिव्रता स्त्री की हँसी और बुद्धिमानों का विनोद आदि।

शीतल—मलय-मारुत, घनसार, चन्द्रमा, जल, हिम, शीत, कमल, मृदुवाणी आदि।

तप्त—शत्रु का प्रताप, दुर्वचन, विरह, सूर्य, अग्नि, तृष्णा, पाप आदि।

सुस्वर—कलरव, कोकिला, मोर, हंस, वीणा, बाँसुरी, मैना आदि।

कुस्वर—उलूक, भैंस, बकरा, कौवा, गधा, कुत्ता, सियार आदि।

मधुर—चन्द्रमा की किरन, माखन, दाख, कवि की युक्ति, मिश्री, ऊख, अमृत, बालक की बातें, स्त्री का आकार आदि।

बली—वायु, हनुमान, भीम, बालि, बलदेव, सिंह, हाथी, सती, गरुड़, देव, काल आदि।

नखशिख

केश—घटा, मरकत के सूत, साँप, अंधकार के तार, सेवार, भ्रमर।

वेणी—साँपिनी।

माँग—कज्जल के कूट पर दीप-शिखा, श्याम घनमण्डल में दामिनी, कसौटी पर कंचन की लीक, अंधकार के हृदय में प्रकाश का बाण, ढाल पर कामदेव की दुधारी तलवार।

अलक—साँपिनी, भ्रमरावली, श्यामघटा।

मुख—कमल, दर्पण, चन्द्र।

ललाट—अर्द्धचन्द्र, स्वर्ण की पट्टी।

भृकुटी—लता, धनुष, खड्ग, पताका, पल्लव।

नेत्र—चकोर, मीन, मृग, खंजन, कमल, भ्रमर, कामशर, ।

कपोल—दर्पण, गुलाब।

कपोल का तिल—सुधासर में नील कमल, चन्द्र पर सिंधु-पङ्क, कमल में अलि, दर्पण पर मोरचा।

शीतला के दाग—दृष्टि गड़ जाने के चिन्ह।

दाँत—मोती, मणि, कुन्दकली, अनार के दाने, हीरा।

नासिका—तोता, तिल-प्रसून, किंशुक।

अधर—बिम्बाफल, मूँगा, लाल फूल।

रसना—षट्रस की कसौटी।

मुखवास—चन्दन, चमेली, बकुल, कमल की सुगंध।

हास्य—कौमुदी, बिजली, सुधा, प्रकाश, उषा।

स्वर—कोकिल, वीणा।

चिबुक—अधखिली कली।

कान—मन के मन्त्री और मित्र, सीप, पुष्प।

ग्रीवा—कपोत, शंख, सुराही।

भुजा—मृणाल, कंचन की डाल।

कर—कमल।

कुच—चक्रवाक, कमल, कुम्भ, श्रीफल, अनार, हाथी का मस्तक, उलटे नगाड़े, पर्वत, कामदेव के तम्बू, मुनि, नारंगी, काम के खिलौने, यौवन-रत्न के सम्पुट।

पीठ—सोने की पट्टी, सोने के केले का पत्ता।

रोमावली—लता।

त्रिवली—नदी, तरंग।

कटि—सिंह की कटि, ब्रह्म के समान निराकार कटि।

नितम्ब—चक्र, मदन-सरोवर के पुलिन।

जंघा—हाथी की सूँड़, केला।

चरण—कमल, पल्लव।

एँड़ी—विद्रुम, बिम्बा, बंधूक, जपा, गुललाला, गुलाब।

अँगुली—पद-पद्म रूपी निषंग में कामदेव के शर।

नख—उड़ुगण, चन्द्रमा, हीरा, मोती, पुष्प।

अंग-दीप्ति—सोना, केसर, चम्पा, कमल, चपला।

सम्पूर्ण अंग—कनकलता, दीपशिखा, चन्द्रकला।

महापुरुष—वृषभ, दीप, स्तम्भ, गिरि, गज, सिंह, सागर, कुम्भ।

पुरुष के अंग—कन्धा वृषभ के समान, स्वर सिंह के समान, वक्ष शिला के समान।

दोष

कविता को दोषों से मुक्त रखना बड़ा आवश्यक है। एक भी दोष सारे गुणों पर पानी फेर देता है। यहाँ हम संक्षेप से कुछ दोषों का वर्णन करते हैं। कविता में उनसे सदा बचते रहने का प्रयत्न करना चाहिये।

१--स्वभाव विरुद्ध कोई बात न कहनी चाहिये। जैसे--

"मुख-मयङ्क अवलोकि के, विकसा मानस-कञ्ज"

यहाँ मुखरूपी चन्द्रमा को देखकर मनरूपी कमल का विकसना स्वभाव-विरुद्ध बात है। चन्द्रमा को देखकर कमल सकुचता है, विकसता नहीं।

अथवा—

"दामिनि सी कामिनि खड़ी, गजगामिनि सुकुमारि"'

इसमें गजगामिनी की मन्दगति और दामिनी की चंचलता परस्पर-विरुद्ध गुण हैं। एक ही समय में एक ही पात्र में दो विरुद्ध गुणों का होना दोष है।

२—किसी चरण में मात्राओं की या वर्णों की कमी या अधिकता न होनी चाहिये। जिस छन्द का जो नियम है, उसका अच्छी तरह पालन होना चाहिये। मात्रा या अक्षरों की न्यूनता या अधिकता जीभ झट बतला देती है। इसलिये किसी छन्द को बार-बार पढ़ने से उसकी त्रुटि आप से आप खटकने लगती है।

३—पद्य में जो बात कही जाय, उसमें कुछ विशेषता या चमत्कार अवश्य होना चाहिये। चमत्कार-हीन कविता केवल तुकबन्दी है। उससे कुछ लाभ नहीं।

"कमला थिर न "रहीम" कहि, यह जानत सब कोय।
पुरुष पुरातन को बधू, क्यों न चंचला होय॥

देखिये, इस दोहे में लक्ष्मी की अस्थिरता का वर्णन करते हुए वृद्ध-विवाह की कैसी दिल्लगी उड़ाई गई है!

४—पदों में निरर्थक शब्दों की भरती नहीं करनी चाहिये। अपने-अपने स्थान पर शब्द पूरे जोरदार होने चाहिये। सु,कु आदि उपसर्गों की भरमार से कवि के शब्द-कोष की कमी मालूम होती है।

५—शब्द कर्ण-कटु न हों।

६—वर्णन में देशाचार की विरुद्धता न पाई जाय। जैसे, महाराष्ट्र स्त्रियों के लिये यह कहना कि वे घूँघट काढ़कर चलती हैं, बिलकुल असत्य बात है।

७—जो बात एक बार कही जा चुकी हो, उसी को फिर दुहराना पुनरुक्ति दोष है। इससे बचना चाहिये। जैसे—"घेरे है नभ घन-घटा, गरजन करत पयोद"। अथवा—बायस पालिय अति अनुरागा। होय निरामिष कबहुँ कि कागा॥ यहाँ घन और पयोद तथा बायस और काग का एक ही अर्थ दोनों चरणों में आना दोष है।

८—जैसा समय हो वैसी ही,उपमा देनी उचित है। कोई पुरुष यदि हाथी पर चढ़कर विवाह करने जा रहा हो तो उस समय उसके बल का महत्त्व दिखाने के लिये काल की उपमा कितनी अनुचित है। परन्तु युद्ध में उसी पुरुष के लिये कहा जा सकता है कि वह शत्रुओं में काल के समान विचरण कर रहा है।

९—किसी चरण के अन्तिम शब्द के कुछ अक्षर यदि उसके आगे वाले चरण में पड़ जायँ तो यह यति-भंग दोष कहलाता है।

जैसे—

"हर हरि केशव मदन मो, हन घनश्याम सुजान"

इसमें "मोहन" का "मो" तो पहले चरण में और "हन" दूसरे चरण में है। यह दोष है। कविता में यति-भंग होने से कभी-कभी अर्थ का अनर्थ हो जाता है।

१०—अर्थ-विरुद्ध शब्दों का प्रयोग न करना चाहिये। जैसे—

"रिपु मारो संग्राम में, उठो अहिंसक वीर"

यहाँ अहिंसा और शत्रु का मारना इन दोनों के अर्थ में विरुद्धता है। अतएव इन दोनों का संयोग ठीक नहीं।

११—जो कुछ कहा जाय, वह ऐसा हो कि समझ में आ जाय। किसी अन्य प्रसंग में कोई दूसरी बात न घुसेड़ देनी चाहिये।

१२—शब्दों और उनके अर्थों के क्रम पर भी ध्यान रखना चाहिये। जैसे—

"अमी हलाहल मद भरे, श्वेत श्याम रतनार।
जियत मरत झुकिझुकि परत, जेहि चितवत इक बार॥"

इस दोहे में अमृत, विष और मदिरा का रूप और गुण क्रम से कहा गया है।

१३—लोक रीति और शास्त्रीय नियमों के विरुद्ध यदि कुछ कहना हो तो वहाँ यह अभिप्राय प्रकट कर देना चाहिये। यदि न किया जायगा तो पढ़नेवालों में भ्रम उत्पन्न हो जायगा।

१४—कविता में अश्लील शब्द न आने पावें।

भाषा

आजकल हिन्दी-कविता मुख्य कर दो भाषाओं में लिखी जाती है, एक ब्रजभाषा, दूसरी बोल-चाल की भाषा, जिसे खड़ीबोली भी कहते हैं। बोलचाल की भाषा से मेरा मतलब उस भाषा से है,

जिसमें आजकल पुस्तकें लिखी जाती हैं। यद्यपि ब्रजभाषा भी संयुक्तप्रान्त के कई ज़िलों में बोली जाती है, परन्तु पुस्तकों में लिखी जानेवाली भाषा ही हिन्दी के नाम से प्रसिद्ध है। हिन्दी के पुराने कवि ब्रजभाषा ही में कविता लिखते थे। सूर और विहारी की कविताओं से ब्रजभाषा का साहित्य प्रतिष्ठित हो चुका है। परन्तु ब्रजभाषा की शिक्षा का प्रबन्ध न होने से आजकल के नवशिक्षितों को ब्रजभाषा की कविता समझने में बड़ी अड़चनें पड़ती हैं। इसलिये बोलचाल की भाषा में कविता लिखने की ओर कवियों की प्रवृत्ति हुई है।

खड़ीबोली की कविता से सबसे बड़ा लाभ तो यह है कि वह पढ़नेवालों की समझ में शीघ्र आ जाती है; क्योंकि गद्य और पद्य का क्रियापद प्रायः एक ही होता है। अन्य प्रान्त के लोग, जिनकी मातृभाषा हिन्दी नहीं है, पर जो साधारण हिन्दी बोलते हैं, वे भी ब्रजभाषा की अपेक्षा खड़ीबोली की कविता जल्द समझ लेते हैं। इन विशेषताओं के होते हुए भी ब्रजभाषा में खड़ीबोली से कई अच्छे गुण हैं। पहले तो उसमें कवियों को स्वतन्त्रता अधिक रहती है। शब्दों का रूप आवश्यकतानुसार तोड़-मरोड़ कर रखने में भी कुछ बुरा नहीं मालूम होता। जैसे—"छाइ रही छवि वैसईरी सुनी जो हुती चन्द चकोर कहावत।" इसमें "वैसी ही" के स्थान पर "वैसई" का प्रयोग किया गया है। कहीं-कहीं "वैसोई" "वैसहि" "वैसि" और "वैसियै" का प्रयोग भी देखने में आता है। परन्तु खड़ीबोली में ऐसी स्वतन्त्रता नहीं है। सर्वत्र वैसा, वैसी रखना पड़ता है और जहाँ तक सम्भव होता है, शुद्ध शब्दों का प्रयोग करना पड़ता है। कटाक्ष के स्थान पर ब्रजभाषा में कटाछ लिखा जा सकता है, परन्तु खड़ीबोली में कटाक्ष ही लिखना पड़ेगा।

ब्रजभाषा में खड़ीबोली से एक विशेषता यह भी है कि उसका

क्रियापद खड़ीबोली के क्रियापद से सुगम होता है। जैसे—"जाओ" "जाता है" "जायगा" के स्थान पर "जाहु" "जात" और "जैहै" का प्रयोग होता है। इनके सिवा वचन और कारकों के प्रयोग में भी बड़ी सुविधा है। जैसे—बातों का बहुवचन बातन और गुण का बहुवचन गुणन या गुनन आदि। कर्म कारक की विभक्ति "को" का काम बहुधा "हि" और "से" का काम "त" से लिया जाता है। और कहीं-कहीं ऐसी विभक्ति बिलकुल छिपा दी जाती है जो खड़ीबोली में असम्भव है। जैसे—"हाय! न कोई तलास करें ये पलासन कौने दवारि लगाई"— इसमें पलासन के आगे "में" बिलकुल छिपा है।

ब्रजभाषा के छंदों में बहुधा दीर्घ का ह्रस्व भी पढ़ना पड़ता है। जैसे—"कैसे कै आवैं कहा करैं बीर! बिचारे बटोहिन दोष कहा है"। इसमें पिङ्गल के अनुसार "से" "कै" "वै" "रैं" "रे" का ह्रस्व होना चाहिए।

इन सब सुविधाओं के द्वारा ब्रजभाषा में यह विशेषता पाई जाती है कि उसके छोटे-छोटे पदों में भी बड़े-बड़े भावों का समावेश किया जा सकता है। परन्तु उतने ही भावों के प्रकट करने के लिये खड़ीबोली के कई पद खर्च करने पड़ते हैं।

ब्रजभाषा में चाहे जितनी विशेषता हो, परन्तु खड़ीबोली की कविता का प्रचार दिन-दूना रात-चौगुना बढ़ रहा है, वह रुक नहीं सकता। ऐसी दशा में खड़ीबोली की कविता ही को सरस और सुगम बनाने की चेष्टा करनी चाहिये।

कविता में भाव अच्छा होना चाहिये। भाव अच्छा हो तो भाषा की त्रुटि खटकती नहीं। उर्दू-कवियों ने अपनी कुल कविता खड़ीबोली में की है। यद्यपि उनकी भाषा विशुद्ध खड़ीबोली नहीं कही जा सकती, क्योंकि उसमें अनेक स्थानों पर ह्रस्व को दीर्घ

और दीर्घ को ह्रस्व पढ़ना पड़ता है; परन्तु उन्होंने खोज-खोज कर ऐसे भाव भरे हैं कि पढ़ते समय उनकी भाषा की त्रुटियों पर ध्यान ही नहीं जाता। आजकल की हिन्दी-कविता में सरस और मनोहर भावों की तो बहुत ही कमी होती है। ऐसी दशा में भाषा भी विशुद्ध न हो, तो पढ़नेवालों का मनोरञ्जन किस प्रकार से होगा। भाव भी उत्तम हों और भाषा भी विशुद्ध हो, तभी कविता का गौरव है। यह गुण संस्कृत-कविता ही में देखने में आता है। संभव है, उन्नति होते-होते खड़ीबोली की कविता को भी यही यश प्राप्त हो जाय।

रस, गुण, छन्द

रस का साधारण अर्थ है स्वाद। पाठक या श्रोता के हृदय में वासना रूप से स्थित हर्ष, शोक, भय, विस्मय, हास आदि जब कवि की चमत्कार-युक्त वाणी से जागृत होते हैं, तब उसे एक अपूर्व आनन्द का अनुभव होने लगता है। वह आनन्द ऐसा अद्भुत होता है कि मन उस समय उसी में लीन हो जाता है। जैसे, योगी ब्रह्मानन्द-सुधा के पान में मस्त हो जाता है और अन्य विषय-व्यापार भूल जाता है। वैसा ही आनन्द काव्य से सहृदय मनुष्य के हृदय में उत्पन्न होता है। उसी अलौकिक आनन्द को रस कहते हैं। जब विभाव, अनुभाव और संचारी भाव से स्थायी भाव व्यक्त होता है तब रस की उत्पत्ति होती है।

जिससे भावना स्पष्ट हो, वह विभाव कहलाता है। विभाव दो प्रकार का होता है, आलम्बन और उद्दीपन। जिसके आश्रय से रस की स्थिति हो, उसे आलम्बन और जिससे रस का उद्दीपन होता है, उसे उद्दीपन विभाव कहते हैं। जिन चिह्नों के द्वारा रस का अनुभव होता है, उन्हें अनुभाव कहते हैं। अनुभाव भाव का कार्यरूप

है। हास्य, मधुर संभाषण और स्नेह-युक्त दृष्टि-निक्षेप आदि अनुभाव कहलाते हैं। जो भाव रसों में संचार करते हैं, वे संचारी भाव कहलाते हैं; और जो भाव रसों में स्थिर रहते हैं, वे स्थायी भाव कहलाते हैं। रति, हास, शोक, क्रोध, उत्साह, भय, ग्लानि, आश्चर्य और निर्वेद ये नौ स्थायी भाव हैं। इन्हीं से क्रमशः शृङ्गार हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स, अद्भुत और शान्त ये नौ रस उत्पन्न होते हैं। प्रत्येक रस के उत्पन्न होने में विभाव, अनुभाव और संचारी का स्थायी भाव के साथ रहना आवश्यक है। संचारी भाव को व्यभिचारी भाव भी कहते हैं। व्यभिचारी भाव के ३३ भेद हैं। यथा—निर्वेद, ग्लानि, शङ्का, असूया, श्रम, मद, धृति, आलस्य, विषाद, मति, चिन्ता, मोह, स्वप्न, विबोध, स्मृति, अमर्ष, गर्व, उत्सुकता, अवहित्थ, दीनता, हर्ष, व्रीड़ा, उग्रता, निद्रा, व्याधि, मरण, अपस्मार, आवेग, त्रास, उन्माद, जड़ता, चपलता और वितर्क। ये स्थायीभाव-रूपी समुद्र में छोटी-बड़ी लहरों के समान उठते और नष्ट होते हैं। इनका प्रभाव चिरस्थायी नहीं होता। हृदय-हीन जड़ पुरुष के हृदय में काव्य से रस उत्पन्न नहीं होता।

रस के साथ ही काव्य में गुण का होना भी आवश्यक है। शब्द और अर्थ गुणयुक्त होने चाहियें। गुण रस से पृथक् नहीं रह सकता। गुण रस का धर्म है। अनुस्वार-युक्त वर्णों का अधिक प्रयोग, टवर्ग का बिल्कुल अभाव और समास की न्यूनता, कविता का माधुर्य गुण है। संयुक्ताक्षर, रेफ और टवर्ग का अधिक प्रयोग, दीर्घ समास-युक्त उद्धत रचना में कविता का ओजगुण कहा जाता है। और जो शब्द-योजना और समास मनोहर हों और सुनते ही जिनका अर्थ समझ में आ जाय, उनमें प्रसाद गुण कहा जाता है।

काव्य की भाषा सदा अर्थ का अनुसरण करती हुई होनी चाहिये।

शृङ्गार, करुण, हास्य और शांत रस के वर्णन में माधुर्य गुण-युक्त भाषा का और अद्भुत, वीर, रौद्र, भयानक और वीभत्स रस में ओज गुण-युक्त भाषा का प्रयोग करना चाहिये। चन्द और भूषण की कविता में ओज गुण की अच्छी बहार देखने को मिल सकता है। प्रसाद की आवश्यकता तो सब रसों में रहती है। प्रसाद-गुण से रहित काव्य को तो काव्य कहना ही न चाहिए।

काव्य का माधुर्य देखना हो तो जयदेव-रचित गीतगोविन्द में देखिए—

उन्मदमदनमनोरथ पथिकवधूजनजनितविलापे।
अलिकुलसंकुलकुसुमसमूहनिराकुलबकुलकलापे॥

कितनी मधुर शब्द-योजना है! कितना सरस प्रवाह है!

❀ ❀ ❀

हिन्दी-कविता में भी माधुर्य-गुण ख़ूब है। देखिये—

कंकन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि।
कहत लखन सन राम हृदय गुनि॥

❀ ❀ ❀

कबहुँक हौं इहि रहनि रहौंगो।
परहित निरत निरन्तर मन क्रम वचन नेम निबहौंगो॥
परुष वचन अति दुसह स्रवन सुनि तेहि पावक न दहौंगो।
विगत मान सम सीतल मन परगुन अवगुन न कहौंगो॥
परिहरि देह-जनित चिंता दुख सुख समबुद्धि सहौंगो।
तुलसिदास प्रभु इहि पथ रहि अविचल हरिभक्ति लहौंगो॥

यह तो गुणों की बात हुई। काव्य में दोष का भी विचार बहुत आवश्यक है। शब्द-दोष, अर्थ-दोष, रस-दोष, आदि कई प्रकार के दोष हैं। श्रुति-कटुत्व, अश्लीलता, ग्राम्यता, अप्रसिद्धता,

संदिग्धता, क्लिष्टता, पुनरुक्ति, छन्दोभंग, यतिभंग आदि दोषों से बचना चाहिए।

रस के सहायक छन्द भी हैं। मंदाक्रान्ता, द्रुतविलम्बित, शिखरिणी और मालिनी छन्द में शृङ्गार, शान्त और करुण रस अधिक मनोहर हो जाते हैं। भुजंगप्रयात, वंशस्थ और शार्दूलविक्रीड़ित में वीर, रौद्र और भयानक रस विशेष प्रभावोत्पादक हो जाते हैं। हिन्दी-छन्दों में सवैया और बरवै में शृङ्गार, करुण और शान्त रस; छप्पै में वीर, रौद्र और भयानक रस; घनाक्षरी, दोहा, चौपाई और सोरठा में प्राय: सभी रस उद्दीप्त होते हैं। सवैया और बरवै में वीररस का काव्य नीरस हो जायगा। काव्य में विरोधी और सहायक रसों का भी ध्यान रखना चाहिये। वीर या रौद्ररस के वर्णन में शृङ्गार, हास्य और करुण रस की उपस्थिति से रस की सिद्धि नहीं हो सकती। हास्यरस से शृङ्गार रस वृद्धि पाता है। पर बीभत्स, भयानक और करुण रस से उसकी सिद्धि में बाधा पहुँचती है। हास्यरस करुणरस का घातक है। कवि ही नहीं, अच्छे वक्ता भी रसों के शत्रुओं और मित्रों की जानकारी से अपने विषय को बहुत प्रभावोत्पादक बना लेते हैं।

आगे यह विषय अधिक स्पष्ट कर दिया जाता है—

संख्या	रस	रस के मित्र	रस के शत्रु
१	शृङ्गार	हास्य, अद्भुत।	करुण, बीभत्स, रौद्र, वीर, भयानक।
२	हास्य	शृङ्गार, अद्भुत।	भयानक, करुण, वीर।
३	अद्भुत	भयानक।	रौद्र।
४	शांत	करुण।	वीर, शृगार, रौद्र, हास्य, भयानक।

संख्या	रस	रस के मित्र	रस के शत्रु
५	रौद्र	भयानक।	हास्य, शृङ्गार, अद्भुत।
६	वीर	रौद्र।	शान्त, शृङ्गार।
७	करुण	शांत।	हास्य, शृङ्गार।
८	भयानक	अद्भुत, रौद्र, वीर।	शृङ्गार, हास्य, शांत।
९	वीभत्स		शृङ्गार।

(कविता-कौमुदी से)

अलङ्कार

काव्य में अलंकार की भी आवश्यकता है। केशवदास ने कहा है—

भूषन बिना न सोहई, कविता, बनिता, मित्र।

गुण और अलंकार में भेद है। गुण रस के बिना नहीं रहते, पर अलंकार रस के बिना भी रह सकते हैं। अलंकार रस के सहायक होते हैं। शब्द और अर्थ में उत्कर्ष प्रदान करके वे रस की वृद्धि करते हैं। पर जहाँ रस नहीं, वहाँ केवल अलंकार भी उक्ति में वैचित्र्य उत्पन्न कर देते हैं।

गद्य और पद्य में जहाँ विशिष्ट शब्दों के प्रयोग से शब्द और अर्थ में कोई चमत्कार उत्पन्न होता है, उसे अलंकार कहते हैं। अलंकार सचमुच कविता के अलंकार (भूषण) हैं। यद्यपि अलंकार के बिना भी रस और गुण की सहायता से कविता प्रभावोत्पादक हो सकती है, पर रस के साथ अलंकार भी हो, तो कविता की आकर्षण-शक्ति बहुत अधिक हो जाती है।

अलङ्कार के मुख्यतः तीन भेद माने गये हैं—शब्दालङ्कार, अर्थालङ्कार, और उभयालङ्कार। इन तीनों के बहुत से उपभेद हैं; जिनकी संख्या सौ से भी अधिक है। हिन्दी में अलङ्कारों की

परंपरा संस्कृत-साहित्य से चलती है। इसलिये इनके नाम भी वही हैं, जो संस्कृत में हैं।

सब अलंकारों की जानकारी के लिये अलङ्कार का कोई बड़ा ग्रन्थ देखना चाहिये। फिर भी यहाँ थोड़े से बहुत प्रसिद्ध अलङ्कारों का साधारण परिचय दे दिया जाता है। इनके ज्ञान से पद्यों में बहुत कुछ सरसता लाई जा सकती है।

शब्दालङ्कार

शब्दालङ्कार के मुख्य भेद ये हैं—अनुप्रास, यमक पुनरुक्त-वदाभास, श्लेष, चित्र, प्रहेलिका इत्यादि। इनमें से हरएक के उदाहरण आगे दिये जाते हैं।

अनुप्रास—भिन्न-भिन्न पदों में जहाँ एक ही प्रकार के स्वर वाले अक्षर या पद बार-बार आवें, वहाँ अनुप्रास कहलाता है। जैसे—

कंकन किंकिनि नूपूर धुनि सुनि।
कहत लखन सन राम हृदय गुनि।

इसमें नकार बार-बार आया है। इसलिये यह बहुत श्रुति-मधुर हो गया है। और धुनि, सुनि, गुनि और कंकन, लखन, सन में भी स्वर और अक्षर में समानता पाई जाती है। यह अनुप्रास है। अनुप्रास को तुक भी कहते हैं।

यमक—जहाँ एक ही शब्द बार-बार आवे, परन्तु अर्थ भिन्न-भिन्न हों, वहाँ यमक कहलाता है। जैसे—

सुमन में न सुगन्ध समायगो,
पवन में वन में भर जायगो।

इसमें 'पवन में' और 'वन में' यमक है।

या

त्वर जोते सर मैन के,
ऐसे देखे मै न ।
हरि नीके नैनान ते,
हरिनी के ये नैन ॥

इसमें 'मैन' और 'हरिनी के' में यमक है।

पुनरुक्तवदाभास—देखने में जहाँ एक ही अर्थ वाले, पर वास्तव में भिन्न अर्थ वाले पद वा शब्द बार-बार आवें, वहाँ पुनरुक्तवदाभास-अलङ्कार होता है। जैसे—

भव भव विभव पराभव कारिनि।
विस्व विमोहनि स्वबस बिहारिनि ॥

इसमें 'भव' शब्द के दो अर्थ हैं, पर देखने में एक ही शब्द बार-बार आया हुआ जान पड़ता है। इससे यहाँ पुनरुक्तवदाभास अलङ्कार कहा जायगा।

श्लेष—जहाँ एक शब्द, पद या पद-समूह के कई अर्थ निकलते हों, वहाँ श्लेष- अलङ्कार होता है। जैसे—

बल प्रताप वीरता बड़ाई।
नाक पिनाकहि संग सिधाई ॥

यहाँ नाक के दो अर्थ हैं—नाक और लज्जा।

या

बहुरि सक्र सम बिनवउँ तेही।
संतत सुरानीक प्रिय जेही ॥

इसमें सुरानीक शब्द में श्लेष है—सुर + अनीक = देवताओं की सेना और सुरा + नीक = सुरा जिसको अच्छी लगे।

या

दई दई क्यों करत है,
दई दई सु कबूल ।

इसमें 'दई दई' में श्लेष है। 'दई दई' का अर्थ 'हाय-हाय' और दई का अर्थ दैव (ईश्वर) तथा 'दिया' भी है।

चित्र

जहाँ पदों में ऐसे समान स्वर वाले अक्षरों और शब्दों की योजना की जाय कि उनसे अनेक चित्र और मनोरंजक कवितायें बन जायँ, वहाँ चित्रालङ्कार कहलाता है।

चित्रालङ्कार कई प्रकार के होते हैं। जैसे—कमलबन्ध, धनुषबन्ध, चामरबन्ध, सर्वतोभद्रगति, कामधेनु, अन्तर्लापिका, बहिर्लापिका, दृष्टिकूटक, एकाक्षर, निरोष्ठ इत्यादि।

एक उदाहरण

आन मान बिन मान जिन, ठान मान अनजान।
मीन हीन बन दीन तन, छीन प्रान मन जान॥

आ	मा	बि	मा	ज़ि	ठा	मा	अ	जा
न	न	न	न	न	न	न	न	न
मी	ही	ब	दी	त	छी	प्रा	म	जा

इस दोहे से कमल-बंध आदि कई चित्र बन सकते हैं।

प्रहेलिका (पहेली)

बीसों का सिर काट लिया।
ना मारा ना खून किया।

इसमें प्रहेलिका और अन्तर्लापिका दोनों का रूप 'नाखून' से प्रकट है।

इसी प्रकार एकाक्षर छंद में एक ही अक्षर आदि से अंत तक रहता है। संस्कृत काव्यों में इसके बहुत से उदाहरण मिलते हैं, पर हिन्दी में केशवदास की कविप्रिया में भी हैं।

निरोष्ठ में ऐसे शब्दों का व्यवहार किया जाता है, जिसमें पवर्ग नहीं आता। अर्थात् जिसे पढ़ते समय ओंठ आपस में नहीं मिलते। जैसे—

चंचल खंजन झखन से,
दोह जलज-दल ऐन।
अनियारे असरीर के,
तीर तिहारे नैन॥

इस प्रकार शब्दानुप्रास से कविता में तरह-तरह के चमत्कार दिखाये जा सकते हैं। उनसे श्रोताओं का मनोरंजन तो होता ही है, कवि के शब्द-भंडार का महत्व भी प्रकट होता है।

अर्थालंकार

जिसके द्वारा अर्थ में चमत्कार आता है उसे अर्थालंकार कहते हैं। इसके सैकड़ों भेद हैं, जिनमें से मुख्य ये हैं—

उपमा, रूपक, अनन्वय, उपमेयोपमा, प्रतीप, परिणाम, उल्लेख, स्मरण, भ्रान्ति, सन्देह, अपन्हुति, उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति, तुल्ययोगिता, दीपक, दृष्टांत, प्रतिवस्तूपमा, निदर्शना, व्यतिरेक, सहोक्ति, विनोक्ति, परिकर, अर्थश्लेष, अप्रस्तुतप्रशंसा, पर्यायोक्ति, व्याजस्तुति, आक्षेप, विरोध, विभावना, विशेषोक्ति, असंभव, असंगत, विषम, सम, विचित्र, अधिक, अल्प, विशेष, व्याघात,

कारणमाला, एकावली, सार, यथासंख्य, पर्याय, परिवृत्ति, परिसंख्या, विकल्प, समुच्चय, समाधि, प्रत्यनीक, काव्यार्थापत्ति, काव्यलिंग, अर्थान्तरन्यास, विकस्वर, प्रौढ़ोक्ति, संभावना, मिथ्याध्यवसित, ललित, प्रहर्षण, विषादन, उल्लास, अवज्ञा, अनुज्ञा, तिरस्कार, लेश, मुद्रा, रत्नावली, तद्गुण, पूर्वरूप, अतद्गुण, अनुगुण, मीलित, सामान्य, उन्मीलित, विशेषक, उत्तर, सूक्ष्म, पिहित, व्याजोक्ति, गूढ़ोक्ति, युक्ति, लोकोक्ति, वक्रोक्ति, स्वभावोक्ति, भाविक, उदात्त, अत्युक्ति, निरुक्ति, प्रतिशोध, विधि, हेतु, प्रमाण इत्यादि।

स्थानाभाव से उपर्युक्त सभी अलंकारों के लक्षण और उदाहरण यहाँ नहीं दिये जा सकते और न यह इस पुस्तक का प्रधान विषय ही है। केवल थोड़े से अलंकारों के लक्षण और उदाहरण यहाँ दे दिये जाते हैं जो आसानी से समझ में आ जाते हैं और कविता में जिनका प्रयोग भी साधारणतः अधिक होता रहता है।

उपमा

दो वस्तुओं में जहाँ आकृति, गुण और दशा में समानता पाई जाती है वहाँ उपमालंकार होता है। इसको स्पष्ट करने के लिये तुल्य, समान, सम, सदृश, यथा, ज्यों, इव, सी, से, सों, लों आदि समानार्थवाची शब्द आते हैं। जैसे—

साधु चरित सुभ सरिस कपासू।
निरस बिसद गुनमय फल जासू॥
खल सन इव पर बन्धन करई।
खाल कढ़ाइ विपति सहि मरई॥

इसमें पहली चौपाई में सन्त की उपमा कपास से दी गई है।

दूसरी चौपाई में खल को उपमा सन से दी गई है। दोनों में सरिस और इव शब्द उपमा-बोधक आये हैं।

उपमा के पूर्णोपमा, लुप्तोपमा, मालोपमा, लक्ष्योपमा, ललितोपमा, रसनोपमा, समुच्चयोपमा, उपमेयोपमा आदि कई भेद हैं।

पूर्णोपमा

जिसमें उपमेय, उपमान, उपमा-वाचक शब्द और गुण ये चारों अंग स्पष्ट हों, उसे पूर्णोपमा कहते हैं। जैसे—

फूलि उठे कमल से अमल हितू के नैन,
कहै रघुनाथ भरे बैन रस सियरे।
दौरि आये भौंर से गुनीजन करत गान,
सिद्ध से सुजान सुखसागर सों नियरे।
सुरभी-सी खुलन सुकवि को सुमति लागी,
चिरिया-सी जागी चिन्ता जनक के जियरे।
धनुष पै ठाढ़े राम रवि से लसत आज,
भोर के से नखत नरिन्द भये पियरे॥

इसमें नैन, राम, गुनीजन आदि उपमेय; कमल, रवि, भौंर आदि उपमान; फूलि उठे, लसत और दौरि आये साधारण धर्म, से, से, से उपमा-वाचक शब्द हैं। अतएव यह पूर्णोपमा है।

लुप्तोपमा

उपमा के चारों अंगों में से जहाँ एक वा दो वा तीन अंग लुप्त हों, वहाँ लुप्तोपमा अलंकार कहलाता है। इसके आठ अंग हैं। जैसे—धर्मलुप्ता, वाचक लुप्ता, उपमान लुप्ता, धर्मवाचक लुप्ता, वाचकोपमेय लुप्ता, धर्मोपमेय लुप्ता, वाचकोपमान लुप्ता और धर्मोपमानवाचक लुप्ता। यहाँ केवल एक का उदाहरण दिया जाता है—

यदपि सरित संसार में
सत सहस्र परिमान।
पै पतितन पाथोधि कहँ,
सुरसरि सरिस न आन॥

इसमें सुरसरि उपमेय और सरिस वाचक तो है पर दूसरे नदी-नद उपमान और उद्धारकर्ता आदि धर्म का लोप है।

मालोपमा

जहाँ एक उपमेय के बहुत से उपमान हों, वहाँ मालोपमालंकार होता है। इसके दो भेद हैं—भिन्नधर्मा, अभिन्नधर्मा। यहाँ दोनों के उदाहरण दिये जाते हैं।

भिन्नधर्मा

बैनतेय बलि जिमि चह कागू।
जिमि शश चहै नाग अरि भागू॥
जिमि चह कुसल अकारन कोही।
सुख सम्पदा चहै सिव-द्रोही॥
हरिपद विमुख परमगति चाहा।
तिमि तुम्हार लालच नर नाहा॥

इसमें कई असंभव बातों से लालच की तुलना की गई है।

अभिन्नधर्मा

कीरति तिहारी राम कहा कहै हनुमान,
दसों दिसि दिव्य दोह दीपति अकेलो सी।
भोडर सी भूषन सी भानु सी भगीरथो सी
भारती सी भव सी भवा सी भुज बेली सी।

कुंद सो कविन्द सी कुमुद सी कपूरिका सो
कंजन को कलिका कलपतरु केली सी ॥
चपला सी चक्र सो चमर सो औ चन्दन सो
चन्द्रमा सी चाँदनी सो चाँदी सी चमेली सी ॥
हनुमान

यहाँ राम को कीर्त्ति को तुलना कई सफ़ेद रंग की वस्तुओं से को गई है।

ललितोपमा

जहाँ उपमेय और उपमान को स्पष्ट करने के लिये चुराता है, निन्दा करता है, हँसता है, होड़ करता है तथा शत्रु, सुहृद्, आदि शब्द आते हैं, वहाँ ललितोपमा अलंकार होता है। जैसे—

करि की चुराई चाल सिंह की चुराइ लंक,
ससि को चुरायो मुख नासा चोरी कीर की।
पिक के चुराये बैन मृग के चुराये नैन,
दसन अनार हाँसी बीजरी गँभीर की।
कहैं कवि बेनी बेनी ब्याल की चुराइ लीन्हों,
रती रती शोभा सब रति के सरीर की।
अब तो कन्हैयाजू को चित हू चुराइ लीन्हों,
चोरटो है, गोरटी वा छोरटी अहीर की ॥
बेनी

इसमें वाचक शब्द 'चुराई' के लिये कई उपमान दिये गये हैं।

रसनोपमा

जिसमें कहे हुये उपमेय क्रमश: उपमान होते जायँ और इसी प्रकार उपमेयों और उपमानों की शृंखला बन गई हो, वहाँ रसनोपमा अलंकार होता है। जैसे—

सुगुन ज्ञान सम उद्यमहु
उद्यम सम फल जान।
फल समान पुनि दान है,
दान सरिस सनमान ॥

भारती-भूषण

उपमेयोपमा

जहाँ उपमेय और उपमान परस्पर एक दूसरे के उपमान और उपमेय हो जायँ, वहाँ उपमेयोपमालङ्कार होता है। जैसे—

तेरो तेज सरजा समत्थ दिनकर सो है,
दिनकर सोहै तेरे तेज के निकर सों।

भूषण

समुच्चयोपमा

जहाँ उपमान के धर्मों की बहुलता हो, वहाँ समुच्चयोपमालङ्कार होता है। जैसे—

श्रीरघुवर को वीरव्रत, साहस सिंह समान।
प्रबल पराक्रम आक्रमन, पंचानन परमान ॥

अर्जुनदास केडिया

यहाँ सिंह के चार धर्मों से उपमेय को समता की गई है।

अनन्वय

जहाँ एक ही वस्तु उपमान और उपमेय दोनों का काम दे, वहाँ अनन्वयालङ्कार होता है। जैसे—

राम के समान राम ही हैं।

प्रतीप

जहाँ उपमान का वर्णन उपमेय के समान किया जाता है, वहाँ प्रतीप अलङ्कार होता है। जैसे—

पाहन जिय जनि गर्व करि,
हौं हो कठिन अपार।
चित दुर्जन के देखिये,
तोसे लाख हजार॥ 'अलङ्कार-प्रकाश'

प्रतीप के पाँच भेद हैं।

रूपक

जहाँ उपमेय और उपमान में कुछ भेद न वर्णन किया जाय, वहाँ रूपकालङ्कार होता है। जैसे—

नव विधु विमल तात जस तोरा।
रघुवर किंकर कुमुद चकोरा॥ तुलसीदास

रूपक के दो भेद हैं—अभेद और तद्रूप।

परिणाम

जहाँ उपमान ही उपमेय हो, वहाँ परिणाम अलंकार होता है। जैसे—

हैं ब्रजचंद पै तेरो चकोर हैं।

उल्लेख

एक ही वस्तु को जहाँ भिन्न-भिन्न लोग अनेक प्रकार से देखें वहाँ उल्लेखालंकार होता है। जैसे—

जनक जाति अवलोकहिं कैसे।
सजन सगे प्रिय लागहिं जैसे॥

सहित विदेह बिलोकहिं रानी।
सिसु सम प्रीति न जाइ बखानी ।।

तुलसीदास

उत्प्रेक्षा

जहाँ दूसरी वस्तु में किसी अन्य वस्तु की संभावना की कल्पना की जाय, वहाँ उत्प्रेक्षालंकार होता है। इसके वाचक शब्द मानो जानो, मेरे, जान, जनु, मनु आदि हैं।

इसके मुख्य तीन भेद हैं—वस्तूत्प्रेक्षा, हेतूत्प्रेक्षा, फलोत्प्रेक्षा।

उदाहरण—

लता भवन ते प्रगट भै,
तेहि अवसर दोउ भाइ।
निकसे जनु जुग विमल विधु,
जलद पटल बिलगाइ ।। तुलसीदास

इसमें दोनों भाइयों और लता-भवन के लिये दो चन्द्रमा और 'जलद-पटल' की संभावना की कल्पना की गई है। 'जनु' उत्प्रेक्षा-बोधक है।

अतिशयोक्ति

जहाँ किसी वस्तु की अत्यंत प्रशंसा के लिये कोई बात लोक-सीमा का उल्लंघन करके कही जाय, वहाँ अतिशयोक्ति अलंकार होता है। जैसे—

अब जीवन कै है कपि आस न कोय।
कनगुरिया कै मुँदरी कंगन होय ।।

तुलसीदास

इसमें कलाई की ऐसी दुर्बलता बताई गई है कि उसमें कनिष्ठिका अँगुली की अँगूठी कंगन की तरह पहनी जा सकती है। यह अतिशयोक्ति है।

तथा

क्या नज़ाकत है कि आरिज़ उनके नीले पड़ गये।
मैंने तो बोसा लिया था ख्वाब में तसवीर का॥

इसमें ऐसी सुकुमारता का वर्णन है, जिस पर स्वप्न में किसी प्रेमी के चित्र के ओंठ का चुंबन करने से आघात पहुँच सकता है।

इसके रूपकातिशयोक्ति, भेदकातिशयोक्ति, अक्रमातिशयोक्ति, चञ्चलातिशयोक्ति, अत्यंतातिशयोक्ति आदि कई भेद हैं।

विरोधाभासालंकार

जहाँ विरोध न होने पर विरोध दिखाई दे, वहाँ विरोधाभासालंकार होता है। जैसे—

ओसरजा शिव तो जस सेत सों,
होत हैं बैरिन के मुँह कारे।
भूषन ते वे अरुन्न प्रताप,
सफेद लखे कुनबा नृप सारे।
साहि तनै तव कोप कृशानु ते,
वैरि गरे सब पानिप वारे।
एक अचंभव होत बड़ो,
तिन ओंठ गहे नृप जात न जारे॥

इसमें सफ़ेद से काला होना, लाल से सफ़ेद होना, अग्नि से पानिपवालों का गलना और ओंठों पर तृण लेने पर भी न जलना आदि विरोधी बातें हैं, पर वास्तव में विरोध नहीं है।

यथासंख्य

जहाँ वस्तुओं का वर्णन क्रम से किया जाय, वहाँ यथासंख्या-लंकार होता है। जैसे—

अमिय हलाहल मद भरे,
सेत स्याम रतनार।
जियत मरत झुकि झुकि परत,
जेहि चितवत इक बार॥

इसमें अमृत, विष और मदिरा के रंगों और उनके गुणों का क्रमशः वर्णन है।

लोकोक्ति

लोक में जो कहावतें प्रचलित हैं, उसका नाम लोकोक्ति है। जैसे—

दुख सुख सब कहँ होत है,
पौरुष तजहु न मीत।
'मन के हारे हार है,
मन के जीते जीत॥'

दृष्टांत

जहाँ उपमेय और उपमा दोनों वाक्यों का अर्थ बिम्ब, प्रति-बिम्ब भाव से कहा जाता है, वहाँ दृष्टांत अलंकार होता है। जैसे—

सिव औरंगहि जिति सकै,
और न राजा राव।
हत्थि मत्थ पै सिंह बिन,
आन न घालै घाव॥

वक्रोक्ति

जहाँ कहने का ढंग कुछ और हो और अर्थ उसका कुछ और हो, वहाँ वक्रोक्ति अलंकार होता है। जैसे—

मैं सुकुमार नाथ बन जोगू।
तुमहिं उचित तप मो कहँ भोगू॥

इसमें एक तरह का ताना है, इसे वक्रोक्ति कहते हैं।

व्याज-स्तुति

जहाँ निन्दा के शब्दों में स्तुति और स्तुति के शब्दों में निन्दा प्रकट हो, वहाँ व्याज-स्तुति अलंकार होता है। जैसे—

एक दिये जहँ कोटिक होत हैं सो कुरुखेत में जाइ अन्हाइय।
तीरथराज प्रयाग बड़े मन वाञ्छित के फल पाइ अघाइय॥
श्री मथुरा बसि केशवदासजू द्वै भुजते भुज चार ह्वै जाइय।
कासीपुरी की कुरीति बुरी जहँ देह दिये पुनि देह न पाइय॥

केशवदास

यहाँ 'काशी की कुरीति' कहकर निन्दा के शब्दों में मोक्ष की बात बताकर स्तुति की गई है।

विभावना

जहाँ किसी हेतु के बिना ही कार्य होने का वर्णन हो, वहाँ विभावना अलंकार होता है। जैसे—

सहितनै सिवराज की, सहज टेव यह ऐन।
अनरीझे दारिद हरै, अनखीझे अरि सैन॥

यहाँ रीझने और खीझने के बिना ही दरिद्रता और शत्रु-सैन्य के नाशकी बात कही गई है।

अर्थान्तरन्यास

कहे गये एक अर्थ के साथ जहाँ दूसरे प्रकार के अर्थ का उल्लेख माना जाय, वहाँ अर्थान्तरन्यास अलंकार होता है। जैसे—

बिना चतुरङ्ग सङ्ग बानरन लैके
बाँधि बारिधि को लंक रघुनन्दन जराई है।
पारथ अकेले द्रोन भीषम से लाख भट
जीति लीन्हीं नगरी बिराट में बड़ाई है।
भूषन भनत ह्वै गुसुलखाने में खुमान
अवरङ्ग साहिबी हथ्याय हरि लाई है।
तौ कहा अचंभो महाराज सिवराज सदा
बीरन के हिम्मतै हथ्यार होत आई है।

भूषण

उभयालङ्कार

जहाँ शब्दालङ्कार और अर्थालङ्कार मिले रहते हैं, वहाँ उभयालङ्कार होता है। इसके दो भेद हैं—संसृष्टि और संकर।

संसृष्टि

'तिल-तंडुल-न्याय' से तिल और चावल की तरह कई अलंकार मिले हों, पर भिन्न-भिन्न भान होते हों, वहाँ संसृष्टि अलंकार होता है। जैसे—

समर मरन पुनि सुरसरि तीरा।
राम काज छन भंगु सरीरा॥
भरत भाइ नृप मैं जन नीचू।
बड़े भाग अस पाइय मीचू॥

इसमें 'रकार' की अधिकता से वृत्यानुप्रास है। समर में मरना धर्म, युद्ध के लिये यह एक भाव पर्याप्त होने पर भी सुरसरि का किनारा, और रामकाज आदि कई कारण मिलकर भाव को और प्रभावित कर रहे हैं, इसलिये यह समाधि है। रामकाज के लिये मृत्यु को चाहना अनुज्ञा है। इसी प्रकार कई अलंकार अलग-अलग लक्षित होने पर भी एक में मिल गये हैं, इससे यह संसृष्टि अलङ्कार है।

संकर

'नीर-क्षीर-न्याय' से दूध और पानी की तरह जहाँ कई अलङ्कार मिलकर एकाकार हो जाते हैं, वहाँ सङ्कर अलङ्कार होता है। जैसे

श्री वृन्दावन बसि बढ़ै, उर अनन्य अनुराग।
करिय कृपा मोपर मिलैं, प्रभु पद पदम पराग॥

इसमें 'पद' का यमक, तथा अर्थालङ्कार और वृत्ति अनुप्रास आदि एक में मिल गये हैं।

अलङ्कार के और भी कई भेद हैं। भाषा जैसे-जैसे परिमार्जित होती जाती है वैसे-वैसे अलङ्कारों की संख्या घटती-बढ़ती रहती है और रूप भी बदलते रहते हैं।

नौसिख पद्य-रचयिताओं के लिये कुछ सम्मतियाँ

कविता करना बहुत कठिन काम है। कवि को तर्क, व्याकरण, राजनीति, आत्मज्ञान, वैद्यक, ज्योतिष, वेद, इतिहास आदि लौकिक, पारलौकिक सब विषयों का ज्ञान सम्पादन करना चाहिये। कवियों को पद-पद पर इनसे काम पड़ता है। इनसे परिचय न रखने से

कवि होना असाध्य है। किसी-किसी में कविता-शक्ति स्वाभाविक होती है। ऐसे जन थोड़े ही अभ्यास से अच्छे कवि हो सकते हैं। जिनमें कवित्व-शक्ति बीज-रूप से नहीं रहती, उनके कवि बनने में बड़े परिश्रम की आवश्यकता होती है। यहाँ पर कुछ साधनों का, जिनके जान लेने से कविता बनाने में बहुत सहायता मिल सकती है, उल्लेख किया जाता है।

कवि बनने की इच्छा रखनेवाले पुरुषों को किसी अच्छे साहित्य-ज्ञाता कवि से, जो सरस हृदय, व्याकरण जाननेवाला तथा छन्दोग्रन्थों का पूर्ण पारगामी हो, काव्य-शास्त्र का अध्ययन करना चाहिये। उनसे अच्छे-अच्छे कवियों की चमत्कारपूर्ण उक्तियों के विषय में चर्चा करनी चाहिए। प्रत्येक रस के आस्वादन से आनन्दित होना चाहिये। भले-बुरे काव्यों के पहचानने की योग्यता प्राप्त करनी चाहिये। इतिहास का अध्ययन करना चाहिये। अभ्यास के लिये महाकवियों की शैली के अनुसार नये पद्य की रचना करनी चाहिये। पुराने कवियों के श्लोकों के पाद, पद, वाक्य आदि की जगह अपने बनाये पाद, पद, वाक्य रखकर अभ्यास बढ़ाना चाहिये। तथा उनकी रचना में कुछ फेरफार करके कुछ अपना कुछ उनका रखकर नवीन अर्थ के समावेश करने की चेष्टा करनी चाहिये।

कुछ कविता-शक्ति प्राप्त हो जाने पर कवि को उचित है कि वह काव्य के और अंगों का ज्ञान प्राप्त करे; सत्कवियों की संगति करे; समस्यापूर्ति करे; अन्य कवियों की कविताओं का पाठ किया करे; समालोचना की शक्ति उपार्जन करे; दूसरे की कविता के दोष और गुण को ध्यानपूर्वक विचार करे; अच्छे वेश में रहा करे; नाटकों का अभिनय देखा करे; गाना सुनने का शौक़ रक्खे; लोकाचार का ज्ञान प्राप्त करे; चित्रकारों और

शिल्पियों के अच्छे-अच्छे चित्रों और शिल्पकार्यों का अवलोकन करे; इतिहास पढ़े; वीरों का युद्ध देखे; श्मशान और अरण्य में घूमे; प्रसन्नचित्त रहे तथा आर्त्तजनों के हर्ष-शोक-पूर्ण वचनों को सुने; प्राकृतिक दृश्य देखे; कल्पना-शक्ति को स्फुरित करने का प्रतिक्षण उद्योग करे। मतलब यह कि कविता में जो नवरस हैं, उनमें प्रत्येक का पूरा, नहीं तो थोड़ा-बहुत तो अवश्य ही ज्ञान प्राप्त करे। जिससे कविता करते समय जहाँ जिस रस के वर्णन की आवश्यकता हो, उसे वहाँ सरलता-पूर्वक उत्तमता से स्थान दे सके। इनके अतिरिक्त कवि के लिये कुछ और भी जानने योग्य बातें हैं। जैसे प्राणियों के स्वभाव की परीक्षा करना, कभी शोक न करना, सूर्य, चन्द्रमा और तारागण के स्थान और उनकी गति आदि का ज्ञान प्राप्त करना, सब ऋतुओं की विशेषता और उनका भेद समझना, सभाओं में सम्मिलित होना, दिन में कुछ सो लेना, फिर कुछ रात रहे उठकर कुछ कविता करना इत्यादि। एक बार लिखी हुई कविता को दो-तीन बार संशोधन करके उसे परिमार्जित कर लेना चाहिये।

सुकवि होने की इच्छा रखने वाले के लिये उचित है कि वह पराधीनता में न रहे; अपने उत्कर्ष पर गर्व करने और पराये उत्कर्ष के न सहने की आदत न डाले; दूसरे की श्लाघा सुनकर प्रसन्नता प्रकट करे और अपनी श्लाघा सुनकर संकोच करे; किसी उपयोगी बात के सीखने में, किसी की शिष्यता स्वीकार करने में सङ्कोच न करे; सन्तुष्ट और सदाचार से रहे; अश्लील बात मुँह से न निकाले; गम्भीरता धारण करे; दूसरे के द्वारा किये गये आक्षेपों को सुनकर क्रोध न करे और न किसी के सामने दीनता प्रकट करे।

कवि की कोई बात चमत्कार से खाली नहीं होनी चाहिये। चमत्कार या विलक्षणताहीन कविता से सुननेवाले को कुछ आनन्द

प्राप्त नहीं हो सकता। कवि में चमत्कारोत्पादन शक्ति का अभाव कदापि न होना चाहिये।

कवि के लिये कविता-विषयक गुण-दोषों का ज्ञान प्राप्त करना भी अत्यन्त आवश्यक है। बिना इसके जाने किसी कवि की कविता निर्दिष्ट दोषों से रहित नहीं हो सकती।

कवि के लिए एकान्त स्थान बहुत उपयुक्त है। जहाँ किसी प्रकार का शोर-गुल न हो, आसपास कोई ऐसे पदार्थ न हों कि बार-बार ध्यान भङ्ग हो जाय, उसी शान्तिमय स्थान में सुख-पूर्वक बैठकर कविता लिखनी चाहिये। जिस विषय पर कविता लिखनी हो, उसी विषय की कल्पना बार-बार मन में उठानी चाहिये। जो कल्पना की जाय, उसके औचित्य या अनौचित्य पर पूरा ध्यान रखना चाहिये। ऐसा न हो कि स्वभाव-विरुद्ध, लोकाचार-विरुद्ध अथवा प्रकरण-विरुद्ध लिख मारा जाय।

कवि के पास शब्दों का एक बृहद् भाण्डार होना चाहिये। जिससे आन्तरिक भावों के प्रकट करने में किसी प्रकार की बाधा न पड़े। जिस कवि के पास नाना प्रकार के शब्दों की प्रचुरता होती है, वह अत्यन्त शीघ्रता और सुगमता से अपने विचारों को तत्काल प्रकट कर सकेगा। इसलिये शब्दों की बहुज्ञता महोपयोगी है। एक ही अर्थ के द्योतक बहुत से शब्दों को तथा अनेकार्थवाची शब्दों को कंठस्थ रखने से बड़ी सहायता मिलती है और उनके उचित प्रयोग से कविता में रोचकता बढ़ती है। हरएक शब्द के आंतरिक भावों को समझना चाहिये कि इसमें क्या विशेषता है। एक ही अर्थ के द्योतक बहुत से शब्दों में से जहाँ जिस शब्द की अधिक आवश्यकता समझ पड़े और जहाँ जिसके होने से कविता में अनूठापन आ जाता हो, वहाँ उसी शब्द को स्थान देने की चेष्टा

करनी चाहिये। तात्पर्य यह कि शब्दों के उपयोग का अच्छा ज्ञान प्राप्त करना चाहिये।

अब आगे हम कुछ प्रचलित छन्दों के भेद और उनके लक्षण उदाहरण-सहित लिखते हैं। इनको ध्यान-पूर्वक समझ लेना चाहिये।

मात्रिक छन्द—सम

(१)

बगहंस

छः मात्राओं का बगहंस छंद होता है। अंत में लघु होता है।

उदाहरण—

राग द्वेष। उभय क्लेश॥
बन विनीत। जगत जीत॥

(२)

सुगति

सात मात्राओं का सुगति छंद होता है। अंत में लघु गुरु होता है।

उदाहरण—

इस लोक में। सुख शोक में॥
मिलकर रहो। ज्यों लहर हो॥

(३)

छवि

आठ मात्राओं का छवि छंद होता है। अंत में जगण होता है।

उदाहरण—

जीवन-चरित्र। निज रख पवित्र॥
यह जगत जान। दर्पण समान॥

(४)

हारी

नो मात्राओं का हारी छंद होता है। अंत में दो गुरु होते हैं।

उदाहरण—

आलस्य त्यागो। श्रम से न भागो॥
यदि कीर्ति चाहो। प्रण को निबाहो॥

(५)

दीपक

दश मात्राओं का दीपक छंद होता है। अंत में गुरु लघु होता है।

उदाहरण—

वह मनुज है धन्य। वैसा नहीं अन्य॥
दे देश को दान। जो देह धन प्राण॥

(६)

आभीर

ग्यारह मात्राओं का आभीर छंद होता है। अंत में जगण होता है।

उदाहरण—

सब का कर उपकार। दुखियों को कर प्यार॥
है यह राह पवित्र। सुख पाने को मित्र!॥

(७)

तोमर

बारह मात्राओं का तोमर छन्द होता है। अन्त में गुरु और लघु होते हैं।

उदाहरण—

मुख में मधुर उच्चार।
कर में सदा उपकार॥
रखते हृदय में प्रीति।
है सुजन की यह रीति॥

(८)

चंद्रमणि

तेरह मात्रा का चन्द्रमणि छन्द होता है। अन्त में एक नगण होता है।

उदाहरण—

कर सद्गति से प्यार अब।
छोड़ कपट-व्यवहार सब॥

निज सुकर्म के अंक जप।
पर सेवा है परम तप॥

(९)

सखी

चौदह मात्राओं का सखी छंद होता है। अंत में यगण होता है।

उदाहरण—

सब घर घर की ब्रजनारी।
दधि गोरस बेंचनहारी॥
मिलि जुत्थ सबै मत कीन्हा।
जमुना-तट मारग लीन्हा॥

ब्रजवासीदास

(१०)

प्रतिभा

चौदह मात्राओं का प्रतिभा छन्द होता है। आदि में लघु होता है। इसका दूना ग़ज़ल होता है।

उदाहरण—

चरित है मूल्य जीवन का।
वचन प्रतिबिम्ब है मन का॥
सुयश है आयु सज्जन की।
सुजनता है प्रभा धन की॥

(११)

कलिका

चौदह मात्राओं का कलिका छंद होता है। अंत में गुरु होता है।

उदाहरण—

पति साथ तिया तपस्विनी।
आर्या साध्वी मनस्विनी॥
बुध कृत सुधा सची सती।
पुनि पतिव्रता एक पती॥

विनायकराव

(१२)

सुलक्षण

चौदह मात्राओं का सुलक्षण छन्द होता है। इसके प्रत्येक चरण में चार मात्रा के बाद एक गुरु लघु होता है।

उदाहरण—

दृढ़ बन धार उच्च विचार।
कर कुछ देश का उपकार॥
मत तू माँग सुख की भीख।
सुखियों के सुलक्षण सीख॥

(१३)

चौबोला

पंद्रह मात्राओं का चौबोला छंद होता है। अंत में लघु गुरु होता है।

उदाहरण—

मित्र सफल निज जीवन करो।
हृदय बीच शुभ गुण गण धरो॥
गैल सदा उन्नति की गहो।
नेता बन समाज में रहो॥

(१४)

चौपई

पन्द्रह मात्राओं का चौपई छन्द होता है। अन्त में गुरु और लघु होता है।

उदाहरण—

उपवन में अति भरी उमङ्ग।
कलियाँ खिलती हैं बहुरङ्ग॥
पर मिलता है उनको मान।
जो हैं सुखद सुगंध-निधान॥

(१५)

पद्धरि

सोलह मात्राओं का पद्धरि छन्द होता है। अन्त में जगण होता है।

उदाहरण—

आनंद कंद! करुणा-निधान।
हे विश्वकोष! सब शक्तिमान॥
यह दीन दास अब है हताश।
प्रभु शीघ्र काटिये मोह पाश॥

(१६)

चौपाई

सोलह मात्राओं का चौपाई छन्द होता है। अन्त में जगण और तगण न पड़ने चाहियें।

उदाहरण—

नव फलधर तरुवर नय जाते।
नव जलधर क्षिति पर नियराते।
यहि विधि सुजन लोक-हितकारी।
होहिं विनम्र विभव बल धारी॥

(१७)

शक्ति

अठारह मात्राओं का शक्ति छंद होता है। आदि में लघु और अंत में सगण, रगण या नगण होता है। यह भुजंगी छंद के ढंग का है, पर वर्ण-वृत्त नहीं है। उर्दू के 'फ़ऊलुन फ़ऊलुन फ़ऊलुन फ़अल' बहर से मिलता-जुलता है।

उदाहरण—

अरे, उठ कि अब तो सबेरा हुआ।
नहीं दूर तेरा अँधेरा हुआ॥
बहुत दूर करना तुझे है सफ़र।
नहीं ज्ञात है राह घर की किधर॥

(१८)

पीयूष-वर्ष

उन्नीस मात्राओं का पीयूष-वर्ष छंद होता है। अंत में लघु-गुरु होता है। दसवीं और नवीं मात्रा पर विराम होता है। अंत में

नगण हो तो इसी छंद का नाम आनन्द-बर्द्धक हो जाता है। फ़ारसी को बहर 'फ़ायलातुन फ़ायलातुन फ़ायलुन' से यह मिलता-जुलता है।

उदाहरण—

जो सुयश जग में कमाया कुछ नहीं।
उस अबुध के हाथ आया कुछ नहीं॥
ज्ञान विद्या-बल कमाओ और यश।
जीत अपने को करो सब लोक वश॥

(१९)

सुमेरु

उन्नीस मात्राओं का सुमेरु छंद होता है। बारहवीं और सातवीं मात्रा पर विराम होता है। अंत में दो गुरु होते हैं। उर्दू का 'मफ़ाईलुन मफ़ाईलुन फ़ऊलुन' यही है।

उदाहरण—

कहाँ हो ऐ हमारे राम प्यारे!
मुझे तुम छोड़कर बन को सिधारे॥
कहाँ प्यारी जनक की वह लली है।
जिसे देखे बिना अति बेकली है॥

हरिश्चन्द्र

(२०)

सगुण

उन्नीस मात्राओं का सगुण छंद होता है। अंत में जगण होता है। आदि में लघु होता है। यह उर्दू के 'फ़ऊलुन फ़ऊलुन फ़ऊ लुन फ़ऊल' से मिलता-जुलता है।

उदाहरण—

जिसे रात दिन काम से है लगाव।
ज़रा भी नहीं काहिली का खिंचाव॥
जिसे है सदा एक धुन एक चाव।
वही डालता दूसरों पर प्रभाव॥

(२१)

शास्त्र

बीस मात्राओं का शास्त्र छंद होता है। अंत में गुरु लघु होता है। उर्दू का 'मफ़ाईलुन मफ़ाईलुन मफ़ाईल' यही है।

उदाहरण—

किसी के काम की सोचो भली बात।
नहीं बेकार खाओ बैठ दिनरात॥
हृदय से मधुर लगता है जिन्हें काम।
उन्हें कब सुबह बीती और कब शाम॥

(२२)

हंसगति

बीस मात्राओं का हंसगति छंद होता है। ग्यारह और नौ मात्रा पर यति होनी है। अंत में दो लघु पड़ते हैं।

उदाहरण—

होते हैं छवि देख विलोचन विकसित।
होता है गुण देख हृदय आनंदित॥
पर प्रिय लगता नहीं रूप से दुर्गुण।
कुरूपता को ढँक देता है सद्गुण॥

(२३)

अरुण

बीस मात्राओं का अरुण छंद होता है। पाँच-पाँच और दस मात्रा पर यति होती है। अंत में रगण होता है। उर्दू का 'फ़ायलुन फ़ायलुन फ़ायलुन फ़ायलुन' यही है।

उदाहरण—

आजकल रात-दिन एकही भाव है।
लोक के चित्त में एकही चाव है॥
देश-हित में जिओ देश-हित में मरो।
देहहित-हेतु सर्वस्व अर्पण करो॥

(२४)

प्लवंगम

इक्कीस मात्राओं का प्लवंगम छंद होता है। ग्यारह और दस मात्रा पर विराम होता है। अंत में जगण पड़ता है।

उदाहरण—

आया झोंका एक वायु का सामने।
पाया सिर पर सुमन समर्पित राम ने॥
पृथ्वी का गुण सरस, गन्ध मन भा गया।
खग-कुल का कल-विकल करुण रव छा गया॥

मैथिलीशरण गुप्त

(२५)

कुंडल

बाईस मात्राओं का कुंडल छंद होता है। बारह और दस मात्रा पर यति होती है। अंत में दो गुरु होते हैं। उर्दू में यह 'मफ़ऊल मफ़ाइल मफ़ाइल फ़ऊलुन' से मिलता है।

उदाहरण—

तू दयाल दीन हौं, तु दानि हौं भिखारी।
हौं प्रसिद्ध पातकी, तु पाप-पुंज-हारी॥
तू ग़रीब को नेवाज, हौं ग़रीब तेरो।
बारक कहिये कृपाल, तुलसिदास मेरो॥

तुलसीदास

(२६)

प्रभाती

कुंडल के अन्त में यदि एक ही गुरु हो, तो उसे प्रभाती छन्द, कहते हैं।

उदाहरण—

ठुमकि चलत रामचन्द्र बाजत पैजनियाँ।
धाय मातु गोद लेत दसरथ की रनियाँ॥
तन मन धन वारि मन्जु बोलतीं बचनियाँ।
कमल वदन बोल मधुर मन्द सी हसनियाँ॥

तुलसीदास

(२७)

लावनी

बाइस मात्राओं का लावनी छंद होता है। तेरह और नौ मात्रा पर विराम होता है। अंत में दो गुरु या लघु गुरु या दो लघु भी हो सकते हैं। लावनी में छः चरण होते हैं।

उदाहरण—

सम्राट स्वयं प्राणेश सचिव देवर हैं।
देते आकर आशीष हमें मुनिवर हैं॥

धन तुच्छ यहाँ यद्यपि असंख्य आकर हैं।
पानी पीते मृग-सिंह एक तट पर हैं॥
सीता रानी को यहाँ लाभ ही लाया।
मेरी कुटिया में राजभवन मन भाया॥

मैथिलीशरण गुप्त

(२८)

उपमान

तेईस मात्राओं का उपमान छन्द होता है। अन्त में दो गुरु और तेरह और दस मात्रा पर विराम होता है।

उदाहरण—

कभी सुयश पाता नहीं, है अत्याचारी।
निरुद्यमी होता नहीं, सुख का अधिकारी॥
उसको मञ्जिल का नहीं, अन्त कभी होता।
जो अन्धा है एक तो, तिस पर है सोता॥

(२९)

मदन

चौबीस मात्राओं का 'मदन' छंद होता है। चौदह और दस मात्रा पर यति होती है। अंत में गुरु लघु होना है। इसे रूप-माला भी कहते हैं।

उदाहरण—

यौवन श्री से विभासित कान्ति अति कमनीय।
वदन सुन्दर, दृग मनोहर, हास्य अनुकरणीय॥
उच्च कुल, धन, मान, विक्रम, अन्य विभव अनेक।
लोकप्रिय होते नहीं ये बिना विनय विवेक॥

(३०)

दिग्पाल

चौबीस मात्राओं का दिग्पाल छंद होता है। बारह, बारह मात्रा पर यति होती है। अन्त में दो गुरु पड़ते हैं। उर्दू में यह मफ़ऊल फ़ायलातुन मफ़ऊल फ़ायलातुन' से मिलता है।

उदाहरण—

पीछे क़दम ज़रा भी हक़ से न टालते हैं।
रण-भूमि में ख़ुशी से निज रक्त डालते हैं॥
दीपक स्वतंत्रता का तब वीर बालते हैं।
तब वे कहीं अँधेरा घर से निकालते हैं॥

(३१)

रोला

चौबीस मात्राओं का रोला छन्द होता है। ग्यारह और तेरह मात्राओं पर यति होती है। अन्त में दो गुरु या दो लघु पड़ते हैं।

उदाहरण—

ससि बिन सूनी रैन, ज्ञान बिन हिरदै सूनो।
कुल सूनो बिन पुत्र, पत्र बिनु तरुवर सूनो॥
गज सूनो इक दन्त, और बिनु पुहुप बिहूनो।
विप्र सून बिन वेद, ललित बिन सायर सूनो॥ बैताल

(३२)

मुक्तामणि

पच्चीस मात्राओं का मुक्तामणि छंद होता है। तेरह और बारह मात्रा पर यति होती है। अन्त में दो गुरु होते हैं।

उदाहरण—

उन्नतिशील सुजान के जीवन की सब लीला।
समझ उसी विधि से करो अपना चरित सजीला।
रखो हृदय में भाव नित उन्नत करने वाला।
यथा कृपण के कंठ में मुक्तामणि की माला॥

(३३)

कामरूप

छब्बीस मात्राओं का कामरूप छंद होता है। नौ, सात और दस मात्रा पर यति होती है। अन्त में गुरु लघु होता है।

उदाहरण—

हे प्रिय युवकगण! क्यों न बनते, लोक-विश्रुत शूर।
शृंगार-रसमय, चरित - नाशक, वृत्ति से रह दूर॥
आदर्श हैं शंकर परशुधर भीष्म श्री हनुमान।
क्यों खो रहे हो, विमल शोभा, कामरूप समान॥

(३४)

गीतिका

छब्बीस मात्राओं का गीतिका छंद होता है। चौदह और बारह पर यति होती है। अन्त में लघु, गुरु होता है।

उदाहरण—

धर्म के मग में अधर्मी से कभी डरना नहीं।
चेतकर चलना कुमारग में क़दम धरना नहीं॥
शुद्ध भावों में भयानक भावना भरना नहीं।
बोध-वर्द्धक लेख लिखने में कमी करना नहीं॥

नाथूरामशङ्कर शर्मा.

(३५)

गीता

छब्बीस मात्राओं का गीता छंद होता है। चौदह और बारह मात्रा पर यति होती है। अंत में गुरु, लघु होता है।

उदाहरण—

भय रहित जीना भय रहित मरना उचित है मित्र।
भय सहित जीवन मरण हैं दोनों महा अपवित्र॥
निर्भय रहो, दृढ़ हो गहो वर बोध-वर्धक पंथ।
यह दे रहा उपदेश है हरि-कथित गीता ग्रंथ॥

(३६)

शुद्ध गीता

सत्ताईस मात्राओं का शुद्ध गीता छंद होता है। चौदह और तेरह मात्रा पर यति होती है। अंत में गुरु, लघु होता है। उर्दू का 'फ़ायलातुन फ़ायलातुन फ़ायलातुन फ़ायलात' इसी से मिलता-जुलता है।

उदाहरण—

नित्य ही रक्खो हृदय में गुरुजनों की सीख याद।
चाहिये साफल्य तो तुम छोड़ दो प्यारे! प्रमाद॥
झूठ या कपटाचरण का अंत है केवल विषाद।
सत्य ही की जीत होती है समझ लो निर्विवाद॥

(३७)

सरसी

सत्ताईस मात्राओं का सरसी छंद होता है। सोलह और ग्यारह पर यति होती है। अन्त में गुरु, लघु होता है।

उदाहरण—

अंशुमालि के शुभागमन की, वेला समझ समीप।
नभ में बुझा चुके थे सुर भी, निज-निज घर के दीप॥
कलरव सुमन-विकास सङ्ग ले, निकली रवि की कोर।
क्षणभर पहले ही दी प्रेमी, कहाँ गए किस ओर॥

(३८)

ललित पद

सोलह और बारह मात्राओं पर विश्राम देकर अट्ठाईस मात्राओं का ललित पद छन्द होता है। अन्त में दो गुरु या एक लघु एक गुरु भी होते हैं।

उदाहरण—

तुम अपने सुख के प्रबन्ध के, हो न पूर्ण अधिकारी।
यह मनुष्यता पर कलंक है, हे प्रियबन्धु! तुम्हारी॥
पराधीन रहकर अपना सुख, शोक न कह सकता है।
यह अपमान जगत में केवल, पशु ही सह सकता है॥

पथिक

(३९)

हरिगीतिका

अट्ठाईस मात्राओं का हरिगीतिका छन्द होता है। सोलह और बारह मात्रा पर यति होती है। अन्त में लघु, गुरु होता है।

उदाहरण—

करि विनय सिय रामहिं समर्पी,
जोरि कर पुनि-पुनि कहैं।

बलि जाउँ तात सुजान तुम कहँ,
विदित गति सबकी अहै ॥
परिवार पुरजन मोंहि राजहिं,
प्रान प्रिय सिय जानबी।
"तुलसी" सुशील सनेह लखि निज,
किंकरी करि मानबी ॥

तुलसीदास

(४०)

विधाता

अट्ठाईस मात्राओं का विधाता छंद होता है। इसकी पहली, आठवीं और पन्द्रहवीं मात्रायें सदा लघु होती हैं। चौदह मात्रा पर यति होती है।

ग़ज़ल इसी ढंग का होता है।

उदाहरण—

भलाई को न भूलेंगे, सुशिक्षा को न छोड़ेंगे।
हठीले प्राण खो देंगे, प्रतिज्ञा को न तोड़ेंगे ॥
बढ़ेंगे प्रेम के पौधे, दया के फूल फूलेंगे।
भरे आनन्द से चारों, फलों के झाड़ झूलेंगे ॥

नाथूरामशङ्कर शर्मा

(४१)

मरहटा

उन्नीस मात्राओं का मरहटा छंद होता है। ग्यारह, आठ और दस मात्रा पर यति होती है। अन्त में लघु, गुरु होता है।

उदाहरण—

कर घोर परिश्रम, कर कुछ उद्यम, छूटेंगे तब क्लेश।
मन में दृढ़ निश्चय, रख कर संचय, नित हितकर उपदेश॥
सविवेक निरन्तर, अपयश से डर, सह जग के आघात।
दुख ही में है सुख, त्यों सुख में दुख, है यह अद्भुत बात॥

(४२)

चौपैया

तीस मात्राओं का चौपैया छंद होता है। दस, आठ और बारह मात्रा पर यति होती है। अन्त में गुरु होता है।

उदाहरण—

भै प्रगट कृपाला दीनदयाला कौसिल्या हितकारी।
हर्षित महतारी मुनिमनहारी अद्भुत रूप निहारी॥
लोचन अभिरामा तन घनश्यामा निज आयुध भुज चारी।
भूषन बनमाला नयन विशाला शोभा सिंधु खरारी॥

तुलसीदास

(४३)

ताटंक

तीस मात्रा का ताटंक छंद होता है। सोलह और चौदह मात्रा पर यति होती है। अंत में गुरु होता है।

लावनी का छंद यही है।

उदाहरण—

कोई मुझ को भूमण्डल का एक छत्र राजा कर दे।
उत्तम भोजन वस्त्र बाग़ वाहन सेवक सुन्दर घर दे॥
पर मैं पुस्तक बिना न इनको किसी भाँति स्वीकार करूँ।
पुस्तक पढ़ते पर्ण-कुटी में दीन बना सानन्द मरूँ॥

(४४)

रुचिर

तीस मात्राओं का रुचिर छंद होता है। सोलह और चौदह मात्रा पर यति होती है। अन्त में दो गुरु या दो लघु या लघु गुरु पड़ते हैं।

उदाहरण—

इस किंकर ने उतर अद्रि से दया-दृष्टि प्रभु की पाई।
सहज सहानुभूति-वश उस पर प्रीति उन्होंने दिखलाई।
लिये जा रहा था रावण वक जब शफरी-सी सीता को।
देखा हमने स्वयं तड़पते उन पद्मिनी पुनीता को॥

मैथिलीशरण गुप्त

(४५)

वीर

इकतीस मात्रा का वीर छन्द होता है। चौपाई और चौपई मिला देने से वीर छन्द बन जाता है। आल्हा यही छन्द है।

उदाहरण—

राजा हमारे भये कलजुगहा जयचँद और पिथौरा राय।
लरि लरि आपुस में चापर भये मरिगे हमें गुलाम बनाय॥
धन बल धरम करम हिन्दुन के बंटाढार भये एक साथ।
राज छूटा अपने हाथे से 'भारतमाता' भई अनाथ॥

(४६)

त्रिभंगी

बत्तीस मात्राओं का त्रिभंगी छंद होता है। १०, ८, ८ और ६ मात्रा पर यति होती है। अन्त में गुरु होता है। जगण वर्जित है।

उदाहरण—

करि बदन विमंडित, ओज अखंडित, पूरण पंडित, ज्ञानपरं।
गिरिनन्दिनि नन्दन, असुरनिकन्दन, सुर उर चन्दन, कीतिकरं॥
भूषण मृग लक्षण, वीर विचक्षण, जन प्रण रक्षण, पाशधरं।
जय जय गणनायक, खलगणघायक, दास सहायक, विघ्नहरं॥

दास

(४७)

दंडकला

बत्तीस मात्राओं का दंडकला छंद होता है। दस, आठ और चौदह मात्रा पर यति होती है। अन्त में सगण होता है।

उदाहरण—

शिव विष्णु ईश बहु रूप तुइ नभ तारा चन्द्र सुधाकर है।
अम्बा धारानल शक्ति स्वधा स्वाहा जल पौन दिवाकर है॥
हम अंशाअंश समझते है सब खाक जाल से पाक रहैं।
सुन लालविहारी ललित ललन हम तो तेरे ही चाकर हैं॥

सीतल

(४८)

करखा

सैंतीस मात्राओं का करखा छन्द होता है। आठ, बारह, आठ और नौ मात्रा पर विराम होता है। अन्त में भगण होता है।

उदाहरण—

भयो नरसिंह बलवान नरसिंह प्रभु
सन्त हितकाज अवतार धारो।

खंभ तें निकसि भू हिरनकस्यप पटक
झटक दै नखन झट उर विदारो ॥
ब्रह्मरुद्रादि सिर नाय जय-जय कहत
भक्त प्रहलाद निज गोद लीनो ।
प्रीति सों चारि दै राजसुख साज सब
नरायनदास वर अभय दीनो ॥

नारायणदास

(४९)

हंसाल

सैंतीस मात्राओं का हंसाल छन्द होता है। अन्त में यगण होता है। बीस और सत्रह मात्रा पर यति होती है।

उदाहरण—

तो सही चतुर तूँ जान परबीन अति
परै जनि पींजरे मोह कूवा।
पाइ उत्तम जनम लाइ लै चपल मन
गाइ गोविन्द गुन जीत जूवा।
आप ही आप अज्ञान नलिनी बँध्यो
बिना प्रभु विमुख कै बेर मूआ।
दास सुन्दर कहैं परम पद तौ लहैं
राम हरि राम हरि बोल सूवा ॥

(५०)

मदनहर

चालीस मात्राओं का मदनहर छन्द होता है। दस, आठ, चौदह और आठ मात्रा पर विराम होता है।

उदाहरण—

संग सीता लछिमन, श्रीरघुनन्दन,
मातन के शुभ पाइ परे, सब दुःख हरे।
अँसुवन अन्हवाये, भागनि आये,
जीवन पाये अंक भरे, अरु अङ्क धरे।
वर बदन निहारैं, सरबसु वारैं,
देहिं सबै सबहीन घनो, बरु लेहि घनो।
तन मन न सँभारैं, यहै बिचारैं,
भाग बड़ो यह है अपनो, किधौं है सपनो॥

(५१)

विजया

चालीस मात्राओं का विजया छन्द होता है। दस-दस मात्रा पर विराम होता है। अन्त में रगण रखने से पढ़ने में मनोहर लगता है।

उदाहरण—

सित कमल बंस सी सीतकर अंस सी
विमल विधि हंस सी हीर वर हार सी।
सत्य गुन सत्व सी सांत रस तत्व सी
ज्ञान गौरत्व सी सिद्धि बिसतार सी॥
कुन्द सी कास सी भारती वास सी
सुरतरु निहार सी सुधारस सार सी।
गंगजल धार सी रजत के तार सी
कीर्ति तव विजय की सम्भु आगार सी॥

छन्दोऽर्णव

(५२)

हरिप्रिया

छियालीस मात्राओं का हरिप्रिया छन्द होता है। बारह, बारह, बारह और दस मात्रा पर विराम होता है। अन्त में दो गुरु होते हैं। इसका नाम चंचरी भी है।

उदाहरण—

चंद किरन सीतल भई चकई पिय मिलन गई
त्रिविध मंद चलत पवन पल्लव द्रुम डोले।
प्रात भानु प्रकट भयो, रजनी कौ तिमिर गयौ
भृंग करत गुंजगान कमलन दल खोले॥
ब्रह्मादिक धरत ध्यान सुरनर मुनि करत गान
जागन की बेर भई नयन पलक खोले।
तुलसिदास अति अनन्द, निरखि के मुखारविंद
दीनन को देत दान भूषन बहुमोले॥

तुलसीदास

मात्रिक—अर्द्ध सम

(१)

बरवा

पहला और तीसरा पद विषम और दूसरा और चौथा पद सम कहलाता है। ३८ मात्रा का बरवा छंद होता है। विषम चरण में बारह और सम में सात मात्राएँ होती हैं। अन्त में जगण रखना रोचक होता है। अन्त में लघु अवश्य होना चाहिये।

उदाहरण—

सब से मिलकर रह मन, वैर बिसार।
दुर्लभ नर तन पाकर, कर उपकार॥
जीवन का कर प्रतिछिन, शुभ उपयोग।
यह न मिले फिर नदिया, नाव सँयोग॥

(२)

अति बरवा

बयालीस मात्राओं का अति बरवा छंद होता है। बारह और नौ मात्रा पर विराम होता है।

उदाहरण—

प्रेम प्रीति रस बिरवा पिय चलेहु लगाय।
सींचन की सुधि लीजो कहुँ मुरझि न जाय॥

(३)

दोहा

विषम पदों में तेरह और सम में ग्यारह मात्रा का दोहा छन्द होता है। आदि में जगण न रखना चाहिये। अंत में लघु होता है।

उदाहरण—

बनना चाहो वीर जो, करना गौरव-त्राण।
या कर धारो लेखनी, या विकराल कृपाण॥

(४)

सोरठा

सम चरणों में १३ और विषम चरणों में ११ मत्राओं का सोरठा छन्द होता है। यह दोहे का उल्टा होता है। सोरठ (सौराष्ट्र) देश में इसका प्रचार अधिक होने से इसका नाम सोरठा पड़ा।

उदाहरण—

"रहिमन" मोहि न सुहाय, अमी पियावत मान बिन।
बरु विष देय बुलाय, मान सहित मरिबो भलो॥
रहीम

———

मात्रिक—विषम

कुंडलिया

(१)

दोहा और रोला मिलाकर छः पद और प्रत्येक पद में चौबीस मात्राओं का कुंडलिया छन्द होता है। कुंडलिया के प्रारम्भ का शब्द और अन्त का शब्द एक ही होता है। दोहे का चौथा चरण रोला का आरंभ होता है। कुल मात्राएँ १४४ होती हैं।

उदाहरण--

रहिये लटपट काटि दिन, बरु घामे माँ सोय।
छाँह न वाको बैठिये, जो तरु पतरो होय॥
जो तरु पतरो होय एक दिन धोखा दैहै।
जा दिन बहै बयारि टूटि तब जर से जैहै॥
कह 'गिरधर' कविराय छाँह मोटे की गहिये।
पत्ता सब झरि जाय तऊ छाँहैं माँ रहिये॥
गिरधर कविराय

(२)

उल्लाला

यह अट्ठाईस मात्रा का छंद है। पहले और तीसरे। चरण में १५ और दूसरे तथा चौथे चरण में १३ मात्राएँ होती हैं। १५ और १३ पर यति होती है। कोई-कोई इसे २६ मात्रा ही का लिखते हैं। उनमें तेरह-तेरह मात्राओं पर यति होती है। दोनों नियम ठीक हैं। कवि अपने इच्छानुसार चाहे अट्ठाईस मात्रा का लिखे, चाहे छब्बीस का। मेरी राय में अट्ठाईस मात्रा वाला अधिक सरस होता है।

उदाहरण—

हे शरणदायिनी देवि ! तू, करती सब का त्राण है।
हे मातृभूमि ! संतान हम, तू जननी, तू प्राण है॥

मैथिलीशरण गुप्त

(३)

छप्पय (षट्पदी)

छः पद और १४८ मात्रा का छप्पय छन्द होता है। प्रथम चार पद रोला के होते हैं, शेष दो पद उल्लाला के।

उदाहरण—

जहाँ स्वतंत्र विचार न बदलें मन में मुख में।
जहाँ न बाधक बनें सबल निबलों के सुख में॥
सब को जहाँ समान निजोन्नति का अवसर हो।
शान्ति-दायिनी निशा हर्ष-सूचक वासर हो॥
सब भाँति सुशासित हों जहाँ, समता के सुखकर नियम।
बस, उसी स्वतंत्र स्वदेश में, जागें हे जगदीश ! हम॥

वर्ण-वृत्त—सम

(१)

तिलका

दो सगण का तिलका वृत्त होता है।

उदाहरण—

इस जीवन में।
पहले पन में॥
यदि संचय है।
तब क्या भय है?

(२)

हंस

एक यगण और दो गुरु का हंस वृत्त होता है।

उदाहरण—

वृद्धि कहाँ है?
सिद्धि जहाँ है॥
वीर नहीं सो।
धीर नहीं जो॥

(३)

मालती

एक सगण और एक यगण का मालती वृत्त होता है।

उदाहरण—

विकसा कली को।
अलि-मंडली को।

नित पालती है।
यह मालती है॥

(४)

नायक

एक सगण दो लघु का नायक वृत्त होता है।

उदाहरण—

मन ! तू भज।
वह है अज।
सुख दायक।
जग नायक॥

(५)

शशिवदना

एक नगण और एक यगण का शशिवदना वृत्त होता है।

यह वर नारी।
अति सुकुमारी॥
शुचि-रदना है।
शशि-वदना है॥

(६)

मल्लिका

एक रगण, एक जगण और गुरु लघु का मल्लिका वृत्त होता है।

उदाहरण—

गूँजने लगे मिलिन्द।
कूँजने विहङ्ग वृन्द॥

हो गया सुगंध वात।
मल्लिका खिली प्रभात ॥

(७)

प्रमाणिका

एक जगण, रगण और लघु गुरु का प्रमाणिका वृत्त होता है।

उदाहरण—

प्रमाद मोह त्याग से।
विवेक से विराग से ॥
मिले अवश्य मुक्ति है।
प्रमाणिका सुयुक्ति है ॥

(८)

विमोहा

दो रगण का विमोहा वृत्त होता है।

उदाहरण—

ब्रह्म को जानिये।
वेद को मानिये ॥
धर्म को धारिये।
मोह को मारिये ॥

(९)

लीला

एक भगण, एक तगण और एक गुरु का लीला वृत्त होता है।

उदाहरण—

संकट में साथ हो।
संगर में हाथ हो।
सज्जन की रीति है।
प्रीति ही प्रतीति है॥

(१०)

समानिका

एक रगण, एक जगण और एक गुरु का समानिका वृत्त होता है।

उदाहरण—

लाख बात बोलिये।
ज्ञान-गाँठ खोलिये।
जो नहीं विवेक है।
तो न ग्राह्य एक है॥

(११)

वापी

एक मगण, एक यगण और गुरु लघु का वापी वृत्त होता है।

उदाहरण—

वापी कूप दिव्याराम।
हीरों से सँवारे धाम।
क्या ये दे सकेंगे शान्ति?
हो जो चित्त में उत्क्रान्ति॥

(१२)

चम्पकमाला

एक भगण, मगण और सगण तथा एक गुरु का चम्पकमाला वृत्त होता है।

उदाहरण—

शान्ति नहीं तो जीवन क्या है ?
कान्ति नहीं तो यौवन क्या है ?
प्रेम नहीं तो आदर क्या है ?
प्यास नहीं तो सागर क्या है ?

(१३)

रथोद्धता

एक रगण, नगण, रगण और लघु गुरु का रथोद्धता वृत्त होता है।

उदाहरण—

बात तौलकर सर्वदा कहो।
सावधान खल से सदा रहो।
अंत सोच तब धार में बहो।
हानि ग्लानि सब धैर्य से सहो॥

(१४)

शालिनी

एक मगण, तगण, तगण और अंत में दो गुरु का शालिनी वृत्त होता है। चार और सात अक्षरों पर विराम होता है।

उदाहरण—

बीथी बीथी साधु को सङ्ग पैये।
सङ्गै सङ्गै कृष्ण की कीर्ति गैये॥
गाये गाये एकताई प्रकासै।
एकै एकै सच्चिदानन्द भासै॥

देवीप्रसाद "पूर्ण"

(१५)

भुजंगी

य य य ल ग का भुजंगी वृत्त होता है। कुल ग्यारह वर्ण होते हैं।

उदाहरण—

समुत्थान का ज्ञान ही मूल है।
इसे भूल जाना बड़ी भूल है॥
सुशिक्षा जहाँ है वहीं सिद्धि है।
जहाँ सिद्धि होगी वहीं वृद्धि है॥

मैथिलीशरण गुप्त

(१६)

इन्द्रवंशा

त त ज र का इन्द्रवंशा वृत्त होता है।

उदाहरण—

आनन्द पीयूष पिया करो सदा।
स्वच्छन्द संलाप किया करो सदा॥
सत्कीर्ति का स्वाद लिया करो सदा।
आदर्श को मान दिया करो सदा॥

(१७)

चंचला

र ज र ज र ल का चंचला वृत्त होता है।

उदाहरण—

त्याग शुभ्र सौध आ किया अरण्य में निवास।
हो गया अनंत शक्तिमान का अनन्य दास॥
सो न मैं रहा, न इन्द्रियाँ न वे रहे विकार।
चंचला करे कटाक्ष क्यों निरर्थ बार बार॥

(१८)

प्रमिताक्षरा

स ज स स प्रमिताक्षरा वृत्त होता है।

उदाहरण—

जिससे प्रसन्न सब लोग रहें।
जिसको सुविज्ञ सब ठीक कहें॥
वह शीलवंत गुण-मंडित है।
सुप्रवीण लोक-प्रिय पंडित है॥

(१९)

तारक

चार सगण एक गुरु का तारक वृत्त होता है।

उदाहरण—

फलहीन हुये सब यत्न हमारे।
मिट हाय गये सुख साधन सारे॥
अब हे प्रभु ज्ञान-प्रकाश दिखाओ।
करुणा करके तम दूर हटाओ॥

(२०)

इन्द्रवज्रा

त त ज ग ग का इन्द्रवज्रा वृत्त होता है। कुल ग्यारह अक्षर होते हैं।

उदाहरण—

जागो, उठो भारत देश वासो।
आलस्य त्यागो, न बनो विलासी॥
ऊँचे उठो दिव्य कला दिखाओ।
संसार में पूज्य पुनः कहाओ॥

(२१)

उपेन्द्रवज्रा

ज त ज ग ग का उपेन्द्रवज्रा वृत्त होता है। पाँच और छः अक्षरों पर विराम होता है।

उदाहरण—

बड़ा कि छोटा कुछ काम कीजै।
परन्तु पूर्वापर सोच लीजै॥
बिना विचारे यदि काम होगा।
कभी न अच्छा परिणाम होगा॥

मैथिलीशरण गुप्त

(२२)

माया

इन्द्रवज्रा और उपेन्द्रवज्रा के मेल से १६ वृत्त बनते हैं। उन्हें उपजाति कहते हैं। उनमें से एक का उदाहरण यहाँ दिया जाता है।

परोपकारी बन वीर आओ।
नीचे पड़े भारत को उठाओ॥
हे मित्र ! त्यागो मद मोह माया।
नहीं रहेगी यह नित्य काया॥

(२३)

दोधक

भ भ भ ग ग का दोधक वृत्त होता है।

उदाहरण—

बाहर हूँ अति शुद्ध हिये हूँ।
जाहि न लागत कर्म किये हूँ॥
बाहर मूढ़ सुअंत सयानो।
ताकहँ जीवन मुक्त बखानो॥

केशवदास

(२४)

कनक-मंजरी

न र र ल ग का कनक-मंजरी वृत्त होता है। इसका दूसरा नाम इन्दिरा है। इसमें ६ और ५ अक्षरों पर विराम होता है।

उदाहरण—

महर नन्द का, पुत्र तू नहीं,
निखिल सृष्टिका, साक्षिरूप है।
उदित है हुआ, वृष्णि-वंश में,
व्यथित विश्वके, त्राण के लिये॥

श्रीधर पाठक

(२५)

भुजंग-प्रयात

चार यगण का भुजङ्ग-प्रयात वृत्त होता है।

उदाहरण—

तुझे बन्ध बाधा सताती नहीं है।
मुझे सर्वदा मुक्ति पाती नहीं है॥
प्रभो शंकरानन्द आनन्ददाता।
मुझे क्यों नहीं आपदा से छुड़ाता॥

नाथूरामशङ्कर शर्मा

(२६)

तोटक

चार सगण का तोटक वृत्त होता है।

उदाहरण—

जन तीस करोड़ यहाँ गिनके।
कर साठ करोड़ हुये जिनके॥
जग में वह कार्य मिला किसको।
यह देश न साध सके जिसको॥

मैथिलीशरण गुप्त

(२७)

मोतियदाम

चार जगण का मोतियदाम वृत्त होता है।

उदाहरण—

अदेवन की उर आनि अनोति।
निबाहन को सुर पालन रीति॥

सुधारन को जन को अधिकार।
धर्यो हरि वामन को अवतार॥

देवीप्रसाद "पूर्ण"

(२८)

शृङ्गारिणी

चार रगण का शृंगारिणी वृत्त होता है। इसे स्रग्विणी भी कहते हैं।

उदाहरण—

वे गृही धन्य हैं जो मनोहारिणी,
मिष्टभाषी सुशीला सदाचारिणी,
धर्मशीला सती धीरता-धारिणी,
सुन्दरी युक्त हैं प्रेम-शृंगारिणी॥

(२९)

मोदक

चार भगण का मोदक वृत्त होता है।

उदाहरण—

हो निज देश सुधार सखा! तब।
उन्नति के कुछ काम करो जब॥
केवल हैं उपदेश वृथा सब।
भूख मिटे मनमोदक से कब॥

(३०)

वंशस्थ

ज त ज र का वंशस्थ वृत्त होता है।

उदाहरण—

प्रवाह होते तक शेष श्वास के।
सरक्त होते तक एक भी शिरा॥
सशक्त होते तक एक लोम के।
लगा रहूँगा हित सर्व भूत में॥

अयोध्यासिंह उपाध्याय

(३१)

द्रुतविलम्बित

न भ भ र का द्रुतविलम्बित वृत्त होता है।

उदाहरण—

विपद संकुल विश्व प्रपंच है।
वहु छिपा भवितव्य रहस्य है॥
प्रति घटी पल संशय प्राण है।
शिथिलता इस हेतु अश्रेय है॥

अयोध्यासिंह उपाध्याय

(३२)

तरल नयन

चार नगण का तरल नयन वृत्त होता है।

उदाहरण—

विशिख सदृश परम दुखद।
परुष वचन कह न सुहृद॥

कर सुकथन हृदय-हरन।
सुखद अमृत सदृश वचन॥

(३३)

बसन्त तिलका

त भ ज ज ग ग का बसंत तिलका वृत्त होता है।

उदाहरण—

कुञ्जें वही, थल वही, यमुना वही है।
बेलें वही, वन वही, विटपी वही है॥
हैं पुष्प पल्लव वही, ब्रज भी वही है।
ए किन्तु श्याम बिन हैं न वही जनाते॥

अयोध्यासिंह उपाध्याय

(३४)

मालिनी

न न म य य का मालिनी वृत्त होता है। आठ और सात अक्षरों पर विराम होता है।

उदाहरण—

जगकर कितनी ही रात मैंने बिताई।
यदि तनिक कुमारों को हुई बेकली थी॥
यह हृदय हमारा भग्न कैसे न होगा।
यदि कुछ दुख होगा बालकों को हमारे॥

अयोध्यासिंह उपाध्याय

(३५)

मन्दाक्रान्ता

म भ न त न ग ग का मन्दाक्रान्ता वृत्त होता है। चार, छः और सात अक्षरों पर विराम होता है।

उदाहरण—

आना प्यारे, महर सुत का, देखने के लिये ही।
कोसों जाती, प्रतिदिन चली, ग्वाल की मंडली थी॥
ऊँचे ऊँचे, विटपि चढ़के, गोप ढोटे अनेकों।
घंटों बैठे तृषित दृग से पंथ को देखते थे॥

अयोध्यासिंह उपाध्याय

(३६)

शिखरिणी

छः और ग्यारह अक्षरों के विराम से य म न स भ ल ग का शिखरिणी वृत्त होता है।

उदाहरण—

अनूठी आभा से सरस सुखमा से सुरस से।
बना जो देती थी बहु गुणमयी भू विपिन को॥
निराले फूलों की विविध दलवाली अनुपमा।
जड़ी बूटी नाना बहु फलवती थीं विलसती॥

अयोध्यासिंह उपाध्याय

(३७)

चामर

र ज र ज र का चामर वृत्त होता है।

उदाहरण—

बाण-विद्ध हो कुरङ्ग जा छिपा बनान्त में।
हाय ! देह-जन्य रक्त ने पता बता दिया॥
ठीक है यही दशा विपत्ति में मनुष्य की।
मित्र जो न शत्रु हो विचित्र बात क्यों नहीं ?

(३८)

पञ्च चामर

ज र ज र ज ग का पंच चामर वृत्त होता है।

उदाहरण—

उसी उदार की कथा सरस्वती बखानती।
उसी उदार से धरा कृतार्थ भाव मानती॥
उसी उदार की सदा सजीव कीर्ति कूजती।
तथा उसी उदार को समस्त सृष्टि पूजती॥
अखण्ड आत्मभाव जो असीम विश्व में परे।
वही मनुष्य है कि जो मनुष्य के लिये मरे॥

मैथिलीशरण गुप्त

(३९)

शार्दूल विक्रीड़ित

म स ज स त त ग का शार्दूलविक्रीड़ित वृत्त होता है। १२ और ७ अक्षरों पर विराम होता है।

उदाहरण—

जाती प्रेम न जाति-पाँति तुझसे, पूछी किसी की कहीं।
तेरे सम्मुख रंक और नृप में, है भेद होता नहीं॥
दोनों ही, बन और गेह, जग में, हैं तुल्य तेरे लिये।
ऊँचे मन्दिर से कुटी तक सभी, हैं चाह तेरी किये॥

मैथिलीशरण गुप्त

(४०)

चित्रलेखा

म भ न य य य का चित्रलेखा वृत्त होता है।

उदाहरण—

आई वेला विरह दुखमयी प्रेम की वाटिका में।
दोनों प्रेमी प्रतिक्षण अति ही उन्मने हो रहे थे॥
कोई भी तो कुछ कह न सका कंठ था रुद्ध ऐसा।
चित्रों-जैसे अचल दृग किये देखते ही रहे वे॥

(४१)

स्रग्धरा

म र भ न य य य का स्रग्धरा वृत्त होता है।

उदाहरण—

नाना फूलों फलों से अनुपम जग की वाटिका है विचित्रा।
भोक्ता हैं सैकड़ों ही मधुप शुक तथा कोकिला गानशीला॥
कौवे भी हैं अनेकों परधन हरने में सदा अग्रगामी।
कोइ है एक माली सुधि इन सब की जो सदा ले रहा है॥

(४२)

अनुष्टुप

इसके चार चरण होते हैं। प्रत्येक चरण में आठ अक्षर होते हैं। पहले और तीसरे चरण का सातवाँ आठवाँ अक्षर गुरु होना चाहिये। सातवाँ न हो तो आठवाँ तो अवश्य हो। दूसरे और चौथे का सातवाँ अक्षर सदा लघु होता है। आठवाँ गुरु हो तो सर्वोत्तम है, नहीं तो लघु भी हो सकता है।

उदाहरण—

स्वस्तिवाद विरक्तों का, और ही कुछ वस्तु है।
वाक्यों में उनके होता, ईश का एवमस्तु है॥

मैथिलीशरण गुप्त

सवैया

२२ वर्णों से लेकर २६ वर्ण तक के कई एक वर्ण वृत्त सवैया नाम से प्रख्यात हो गये हैं। उनके कई भेद हैं। नीचे कुछ सवैयों के लक्षण और उदाहरण लिखे जाते हैं—

(१)

मदिरा

सात भगण और अन्त में एक गुरु का मदिरा सवैया होता है।

उदाहरण—

दीन अधीन हो पाय परी हों अरी उपकार को धावहि तू।
मेरी दशा लखि होहि प्रसन्न दया उर अन्तर लावहि तू॥
नैनन के हिय की विरहागिनि एकहि वार बुझावहि तू।
श्री मनमोहन-रूपसुधा "मदिरा" मद मोंहि छकावहि तू॥

अज्ञात

(२)

मत्तगयंद

सात भगण और अन्त में दो गुरु का मत्तगयंद सवैया होता है। इसे मालती भी कहते हैं।

उदाहरण—

या लकुटी अरु कामरिया पर राज तिहूँ पुर को तजि डारौं।
आठहु सिद्धि नवो निधि को सुख नन्द की गाय चराय बिसारौं॥

नैनन सों रसखान जबै ब्रज के बन बाग तड़ाग निहारौं।
कोटिन वे कलधौत के धाम करील के कुंजन ऊपर वारौं॥
रसखान

(३)

किरीट

आठ भगण का किरीट सवैया होता है।

उदाहरण—

हे करतार ! विनै सुनो दास की लोकन को अवतार कर्‌यो जनि।
लोकन को अवतार कर्‌यो तो मनुष्यन को तो सँवार कर्‌यो जनि॥
मानुष हूँ को सँवार कर्‌यो तो तिन्हैं बिच प्रेम पसार कर्‌यो जनि।
प्रेम पसार कर्‌यो तो दयानिधि केहूँ बियोग विचार कर्‌यो जनि॥

(४)

दुर्मिल

आठ सगण का दुर्मिल सवैया होता है।

उदाहरण—

कबहूँ ससि माँगत रारि करैं, कबहूँ प्रतिबिम्ब निहारि डरैं।
कबहूँ करताल बजाइ कै नाचत, मातु सबै मन मोद भरैं॥
कबहूँ रिसिआइ कहैं हठि कै, पुनि लेत सोई जेहि लागि अरैं।
अवधेस के बालक चारि सदा, तुलसी मन मन्दिर में बिहरैं॥
तुलसीदास

(५)

अरसात

सात भगण और अंत में एक रगण का अरसात सवैया होता है।

उदाहरण—

जा थल कीन्हें बिहार अनेकन ता थल काँकरी बैठि चुन्यो करैं ।
जा रसना ते करो बहु बातन ता रसना सों चरित्र गुन्यो करैं ।।
आलम, जौन से कुंजन में करी केलि तहाँ अब सीस धुन्या करैं ।
नैननि में जे सदा रहते तिनकी अब कान कहानी सुन्यो करैं ।।

आलम

(६)

सुन्दरी

आठ सगण और अन्त में एक गुरु का सुन्दरी सवैया होता है ।

उदाहरण—

सुख शान्ति रहे सब ओर सदा अविवेक तथा अघ पास न आवें ।
गुण शील तथा बल बुद्धि बढ़े, हठ बैर विरोध घटें मिट जावें ।।
सब उन्नति के पथ में विचरैं, रति पूर्ण परस्पर पुण्य कमावें ।
दृढ़ निश्चय और निरामय होकर, निर्भय जीवन में जय पावें ।।

मैथिलीशरण गुप्त

(७)

मकरंद

सात जगण और एक यगण का मकरंद सवैया होता है । इसका नाम वाम भी है ।

उदाहरण—

कँपै उर बानि डगै बर डीठि त्वचाऽति कुचै सकुचै मति बेली ।
नवै नवग्रीव थकै गति केशव बालक ते सँगही सँग खेली ।।

लिये सब आधिन व्याधिन संग जरा जब आवै ज्वरा की सहेली।
भगै सब देह दसा जिय साथ रहै दुरि दौरि दुराश अकेली ॥
केशवदास

(८)

लवंगलता

आठ जगण और एक लघु का लवंगलता सवैया होता है।

उदाहरण—

चढ़ो प्रति मंदिर सोभ बढ़ी तरुनी अवलोकन को रघुनन्दनु।
मनो गृहदीपति देह धरे सु किधौं गृहदेवि विमोहति हैं मनु ॥
किधौं कुल देवि दिपैं अति केसव कै पुरदेविन कौ हुलस्यो गनु।
जहाँ सु तहीं यहि भाँति लहैं दिवि देविन को मद घालत हैं मनु ॥
केशवदास

(९)

चकोर

सात भगण और गुरु लघु का चकोर सवैया होता है।

उदाहरण—

हे प्रिय बन्धु! विरोध मिटाकर प्रीति प्रचार करो सब ओर।
संयमशील बनो मतिमान सुधार करो प्रण ठान कठोर।
चेत करो, धिक जीवन है यदि नाम मिला जग में कुल-बोर।
छोड़ घनो बकवाद बनो बस, भारत-उन्नति-चन्द्र-चकोर ॥

सवैया छंदों के और भी कई भेद हैं। परन्तु मदिरा, मत्तगयंद, किरोट, दुर्मिल, अरसात, सुन्दरी, मकरन्द, लवंगलता और चकोर नामक सवैया हिन्दी-साहित्य में बहुत प्रचलित हैं। उनके लक्षण और उदाहरण ऊपर लिखे जा चुके हैं। उनके सिवा सात

जगण और अंत में लघु गुरु का "सुमुखो", आठ सगण और एक लघु का "अरविंद", आठ सगण और दो लघु का "सुख" और आठ जगण का "मुक्तहरा" सवैया भी होते हैं।

दंडक

दंडक वे छन्द कहलाते हैं, जिनके प्रत्येक पद में २६ से अधिक अक्षर हों। दंडक के दो भेद हैं—साधारण दंडक और मुक्तक।

साधारण दंडक के आठ भेद हैं, उनमें से दो के लक्षण और उदाहरण यहाँ दिये जाते हैं—

सुधानिधि

इसमें एक गुरु और एक लघु के क्रम से ३२ वर्ण होते हैं।

उदाहरण—

का करै समाधि साधि का करै विराग जाग
का करै अनेक योग भोगहू करै सु काह।
का करै समस्तवेद औ पुराण शास्त्र देखि
कोटि जन्म लों पढ़े मिलै तऊ कछू न थाह॥
राज्य ले कहा करे सुरेश औ नरेश है
न चाहिये कहूँ सुदुःख होत लोक लाज माह।
सात दीप खंड नौ त्रिलोक संपदा अपार
लै कहा सुकीजिये मिलैं जु आप सीय-नाह।

काव्य-सुधाकर

अनंग-शेखर

इसके प्रत्येक चरण में ३२ अक्षर लघु और गुरु के क्रम से होते हैं।

उदाहरण—

गरजि सिंहनाद लों निनाद मेघनाद वीर
क्रुद्धमान सान सों कृशानु बान छंडियं।
लखी अपार तेज धार लक्खनो कुमार वारि
बान सों अपार धार वर्षि ज्वाल खंडियं।
उड़ाय मेघमाल कों उताल रच्छपाल बाल
पौन बान अत्र घाल कोस लाल दंडियं।
भयो न होत होयगो न ज्यों अमान इन्द्रजीत
रामचन्द्र बन्धु सों कराल युद्ध मंडियं॥

लक्ष्मण-शतक

मुक्तक

मुक्तक वे छंद कहलाते हैं, जिनके प्रत्येक चरण में केवल अक्षरों की संख्या नियमित होती है। गुरु-लघु का कोई क्रम नहीं होता। इसके भेद ये हैं—मनहर, जनहरण, कलाधर, रूप घनाक्षरी, जलहरण, डमरू, कृपाण, विजया, देवघनाक्षरी।

इनमें बहुत प्रसिद्ध मुक्तकों के लक्षण और उदाहरण यहाँ दिये जाते हैं--

मनहर कबित्त

यह छंद एकतीस अक्षर का होता है। १६ और १५ अक्षरों पर विराम होता है। इसे घनाक्षरी और कबित्त भी कहते हैं। अन्त का अक्षर गुरु अवश्य होता है। शेष का कोई नियम नहीं है।

उदाहरण—

सुनिये विटप प्रभु पुहुप तिहारे हम, राखिहौ हमैं तो शोभा रावरी बढ़ावैंगे। तजिहौ हरषि कै तो बिलग न मानैं कछू, जहाँ

जहाँ जैहैं तहाँ दूनो जस गावैंगे। सुरन चढ़ैंगे नर सिरन चढ़ैंगे फेर, सुकवि "अनोस" हाथ हाथन बिकावैंगे। देस में रहेंगे, परदेस में रहेंगे, काहू भेस में रहेंगे तऊ रावरे कहावैंगे॥

अनोस

कलाधर

क्रमशः ३० गुरु-लघु और अंत में एक गुरु, कुल ३१ वर्णों का कलाधर दंडक होता है।

उदाहरण—

जाय के भरत्थ चित्रकूट राम पास बेगि
हाथ जोरि दीन ह्वै सुप्रेम तें बिनै करी।
सीय तात मात कौसिला बसिष्ठ आदि पूज्य
लोक वेद प्रीति नीति की सुरीतिहा धरी।
जान भूप बैन धर्मपाल राम ह्वै सकोच
धीर दे गँभीर बंधु की गलानि को हरी।
पादुका दई पठाय औध को समाज साज
देख नेह राम सीय के लिये कृपा भरी॥

काव्य-सुधाकर

रूप घनाक्षरी

लक्षण और उदाहरण एक ही छन्द में हैं—

रूपक घनाक्षरीहुँ गुरु लघु नियम न,
बत्तिस बरन कर रचिये चरन चारि।
कीजै बिसराम आठ आठ आठ आठ करि,
अन्त एक लघु धरि त्यों नियम उर धारि।
या विधि सरस भाग छंद गुरु शेष नाग,
कीनों कविराजन के काज बुद्धि ते विचारि।

पद्य सिंधु तरिबे को रचना के करिबे को,
पिङ्गल बनाओ भेद पढ़ि शुद्धि कै सुधारि।
छंद-विनोद

अर्थात्, इस छंद में गुरु लघु का कोई नियम नहीं है। सोलह-सोलह अक्षर के विश्राम से बत्तीस अक्षरों का रूप घनाक्षरी छंद होता है। अंत में गुरु लघु (ऽ।) अवश्य होता है।

जलहरण

बत्तीस अक्षरों का जलहरण छंद होता है। अन्त में दो लघु होते हैं। कुछ कवियों ने अन्त में एक गुरु रखकर भी इसकी रचना की है।

उदाहरण—

भरत सदा ही पूजे पादुका उते सनेम
इते राम सीय बंधु सहित पधारे बन।
सूपनखा कै कुरूप मारे खल झुंड घने
हरी दससीस सीता राघव विकल मन।
मिले हनुमान त्यों सुकंठसों मिताई ठानि
बाली हति दीनौं राज सुग्रीवहिं जानि जन।
रसिक विहारी केसरी कुमार सिंधु लाँघि
लंक जारि सीय सुधि लायो मोद बाढ़ो मन॥
रसिक विहारी

देव घनाक्षरी

आठ, आठ, आठ और नौ अक्षरों के यति से ३३ अक्षर का देव घनाक्षरी छंद होता है। अंत के तीन वर्ण लघु होते हैं।

उदाहरण—

झिल्लो झनकारैं पिक चातक पुकारें बन मोरनि गुहारैं उठैं जुगनू चमकि चमकि। घोर घन कारे भारे धुरवा धुरारे धाय, धूमनि मचावैं नाचें दामिनि दमकि दमकि ।। झूकनि बहार बहै लूकनि लगावे अंग हूकनि भभूकनि की उर में खमकि खमकि। कैसे करि राखों प्राणप्यारे जसवंत बिना, नान्हो नान्हो बूँद झरै मेघवा झमकि झमकि ।।

जसवंत सिंह

प्रस्तार

छंद-शास्त्र में प्रस्तार गणित की वह रीति है, जिससे छंदों को संख्या और उनके भेद का ज्ञान होता है।

पद्य-रचना और प्रस्तार से कोई सीधा सम्बंध नहीं है। प्रस्तार का ज्ञान न रखते हुये भी लोग पद्य-रचना कर सकते हैं और उत्तम कोटि के कवि हो सकते हैं। और केवल प्रस्तार के अच्छे ज्ञान के भरोसे कोई कवि होना चाहे तो वह कवि नहीं हो सकता। इससे यह आवश्यक नहीं कि हरएक पद्य-रचना सीखने वाले को प्रस्तार का ज्ञान होना ही चाहिये। फिर भी यह विषय छंद-शास्त्र के अंतर्गत है, इसलिये इसकी साधारण जानकारी रखना अनावश्यक नहीं है।

छंद दो प्रकार के होते हैं—वर्णवृत्त और मात्रिक। इसलिये प्रस्तार भी दोनों का अलग-अलग है। एक को वर्ण-प्रस्तार और दूसरे को मात्रा-प्रस्तार कहते हैं।

प्रस्तार के अंग ये हैं—सूची, नष्ट, उद्दिष्ट, पाताल, मेरु, खंड-मेरु, पताका और मर्कटी।

सूची

जितने वर्ण या मात्रा की सूची बनाना हो, वहाँ तक एक से प्रारंभ करके अंक लिख ले; फिर उसी क्रम से मात्रिक छंदों की

संख्या में पिछले एक अंक को जोड़ता हुआ आगे बढ़ाता जाय। वर्ण-वृत्त सूची में प्रत्येक संख्या को दूना करता हुआ बढ़ाता जाय। अंत में अभीष्ट अंक प्राप्त होगा। जैसे, यह जानना हो कि दस मात्रा और दस वर्णों के कितने छंद हो सकते हैं? तो ऐसी सूची बनानी चाहिये—

मात्रा या वर्ण-संख्या	मात्रिक छंद-सूची	वर्ण-वृत्त-सूची
१	१	२
२	२	४
३	३	८
४	५	१६
५	८	३२
६	१३	६४
७	२१	१२८
८	३४	२५६
९	५५	५१२
१०	८९	१०२४

इसी प्रकार आगे भी गणित किया जा सकता है।

इससे यह पता चला कि दस मात्राओं के ८९ मात्रिक छंद हो सकते हैं और दस वर्णों के १०२४ वर्ण-वृत्त। इसी तरह और आगे भी बढ़ाया जा सकता है।

वर्ण-प्रस्तार

वर्ण-प्रस्तार से यह बात जानी जाती है कि अमुक संख्या के वर्णों से कितने प्रकार के छंद बन सकते हैं। इसके लिये नियम यह है कि जितने वर्णों के छंद जानने हों, उतने गुरु चिन्ह एक पंक्ति में लिखो। फिर दूसरी पंक्ति में पहले गुरु के नीचे लघु लिखो और बाकी गुरु। तीसरी पंक्ति में दूसरी पंक्ति के सबसे बायें वाले गुरु के नीचे लघु लिखो, आगे का बाक़ी वैसाही उतार लो और बाईं ओर सब गुरु लिखो। जब इस प्रकार करते-करते सब लघु हो जायँ, तब प्रस्तार को पूरा हुआ समझो। जैसे, यदि तीन वर्णों का प्रस्तार करना है तो वह इस प्रकार होगा—

पहला रूप	S S S
दूसरा रूप	I S S
तीसरा रूप	I I S
चौथा रूप	I I I

इसी प्रकार चार वर्णों के प्रस्तार का यह रूप होगा—

पहला रूप	S S S S
दूसरा रूप	I S S S
तीसरा रूप	S I S S
चौथा रूप	I I S S
पाँचवाँ रूप	S S I S
छठा रूप	I S I S
सातवाँ रूप	S I I S

आठवाँ	। । । ऽ
नवाँ रूप	ऽ ऽ ऽ ।
दसवाँ रूप	। ऽ ऽ ।
ग्यारहवाँ रूप	ऽ । ऽ ।
बारहवाँ रूप	। । ऽ ।
तेरहवाँ रूप	ऽ ऽ । ।
चौदहवाँ रूप	। ऽ । ।
पन्द्रहवाँ रूप	ऽ । । ।
सोलहवाँ रूप	। । । ।

इसी तरह आगे भी समझो।

मात्रा-प्रस्तार

वर्ण-प्रस्तार से मात्रा-प्रस्तार में कुछ भिन्नता है। वर्ण-प्रस्तार में अक्षरों की संख्या निश्चित होती है, पर मात्रा-प्रस्तार में अक्षर चाहे जितने कम या अधिक हों, मात्रा समान होनी चाहिये।

मात्रा-प्रस्तार की यह रीति है कि यदि मात्राओं की संख्या सम है तो पहली पंक्ति में उतने ही गुरु लिखो, जितनी मात्राओं का प्रस्तार करना हो। और यदि संख्या विषम है तो पहली पंक्ति की बाईं ओर सब से पहले लघु लिखो और बाक़ी गुरु।

दूसरी पंक्ति में बाईं ओर के सब से पहले गुरु चिन्ह के नीचे लघु लिखकर बाक़ी सब जैसा का तैसा उतार लो। ऐसा करने से यह निश्चय ही है कि विषम मात्राओं में कमी पड़ जायगी। इसके लिये यह नियम है कि बाईं ओर उतनी ही मात्राओं के लघु या गुरु चिन्ह बढ़ा लो।

जैसे, छः मात्राओं का प्रस्तार। छः सम संख्या है। इसलिये पहली पंक्ति में तीन गुरु लिखे गये—ऽ ऽ ऽ

दूसरी पंक्ति में बाईं ओर के पहले गुरु के नीचे लघु लिखा और शेष दोनों गुरु वैसा ही उतार लिया तो यह रूप हुआ—

। S S

पर ऐसा करने से एक मात्रा की कमी हुई। इसलिये पंक्ति की बाईं ओर एक लघु और बढ़ा दिया। अब यह रूप हुआ—

। । S S

इसी प्रकार छः मात्रा के तेरह भेद होंगे, जिनक क्रम यह होगा—

S S S
। । S S
। S । S
S । । S
। । । । S
। S S ।
S । S ।
। । । S ।
S S । ।
। । S । ।
। S । । ।
S । । । ।
। । । । । ।

विषम संख्या वाले मात्रा के प्रस्तार में पहली पंक्ति में बाईं ओर पहले लघु लिखा जायगा। उसके बाद शेष गुरु। जैसे,

पाँच मात्रा का प्रस्तार करना हो, तो पहली पंक्ति में सब से पहले एक लघु लिखोगे तो यह रूप होगा—। S S

शेष रूप इस प्रकार होंगे—

ऽ । ऽ

। । । ऽ

ऽ ऽ ।

। । ऽ ।

। ऽ । ।

ऽ । । ।

। । । । ।

चार मात्राओं का प्रस्तार इस प्रकार होगा—

ऽ ऽ

। । ऽ

। ऽ ।

। । ऽ

। । । ।

नष्ट

नष्ट उस रीति को कहते हैं, जिससे प्रस्तार किये बिना हो बताया जाता है कि इतने वर्ण के प्रस्तार में अमुक रूप कैसा होगा।

नियम यह है कि पूछी हुई संख्या यदि सम है तो पहले लघु लिखो और यदि विषम है तो गुरु। इसके बाद उस अंक को आधा किया। यदि विषम है तो उसमें एक जोड़कर आधा किया। आधा करने पर विषम आवे तो गुरु, और सम आवे तो लघु लिखो। इसी प्रकार आधा करते-करते और विषम और सम के क्रम से गुरु और लघु लिखते-लिखते वहाँ तक जाना चाहिये, जहाँ संख्या पूरी हो जाय। अंतिम रूप ही उत्तर होगा। जैसे—

किसी ने पूछा कि पाँच वर्ण के छंद का ग्यारहवाँ रूप क्या होगा ? उत्तर इस प्रकार होगा—

ग्यारह संख्या विषम है। इससे पहले गुरु लिखो। फिर ग्यारह में एक जोड़कर आधा किया, छः आया। छः सम संख्या है। इसके लिये एक लघु लिख दिया। फिर छः का आधा किया तो ३ आया। यह विषम है। इससे गुरु लिखा। फिर इसका आधा करने के लिये एक जोड़कर चार किया। उसका आधा किया तो २ आया। दो सम है। इससे लघु लिखा। फिर इस का आधा किया तो एक आया। एक विषम है। इसलिये गुरु लिखो। अब यह रूप हुआ— S । S । S

इस प्रकार चार वर्णों के प्रस्तार का छठा रूप यह हुआ— । S । S और सात वर्णों के प्रस्तार का पाँचवाँ रूप—S S । S

उद्दिष्ट

उद्दिष्ट उस रीति को कहते हैं, जिससे यह बताया जाता है कि अमुक रूप का इतने वर्णों के प्रस्तार में कौन-सा भेद है।

रीति यह है कि जितने वर्ण हों, उतने के नीचे एक से लेकर दूने अंक लिखता चला जाय; फिर जितने अंक लघु के नीचे पड़ें, उनको जोड़कर उनमें एक मिला दे, वही उत्तर होगा। जैसे, चार वर्ण का । S S । रूप कौन-सा भेद है ? यह जानना है, तो उसे इस प्रकार लिखो--

। S S ।
१ २ ४ ८

एक और आठ लघु के नीचे पड़े हैं, इन्हें जोड़ा तो नौ हुये। उसमें एक मिलाया तो दस हुये, यही उत्तर है।

——